CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महामंत्र की अनुप्रेक्षा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समालोचनार्थम्
सप्रेम भेंट

वर्ग संख्या 2 / हि० ८६
प्राप्ति-संख्या 260
ग्रन्थ-कार्ड
श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान
ग्रन्थागार
नरिया, वाराणसी-५
ग्रन्थ नाम महामंत्री की अनुप्रेक्षा
लेखक भद्रंकरविजयजी गणिवर

स्वीकृति भेजें।

लेनेवाले का नाम	देनेकी तिथि	लेनेवालेका हस्ताक्षर	लौटानेकी तिथि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हि० ४६

महामंत्र की अनुप्रेक्षा

*

लेखक

पुज्य पं० श्री भद्रङ्कर विजयजी गणिवर

260

संवत् २०२८

प्रकाशक :

मंगल प्रकाशन मन्दिर, कड़ी

उत्तर गुजरात

*

प्रथमावृत्ति

मूल्य दो रुपये पचास पैसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी संस्करण—प्रथमावृत्ति संवत् २०२८ वि०

*

अनुवादक—श्री सोहनलाल पटनी
एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी)
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, सिरोही (राज०)

*

प्राप्ति स्थान :

१. मंगल प्रकाशन मन्दिर
पो० कड़ी (उत्तर गुजरात)

२. सरस्वती पुस्तक भण्डार
रतनपोल, हाथीखाना,
अहमदाबाद नं० १

३. सोमचन्द डी. शाह, पालिताणा, (सौराष्ट्र)

४. सेवन्तीलाल वी. जैन
२० महाजन गली, पहलामाला
झवेरी बाजार, बम्बई नं० २

५. ललितकुमार गोरधनभाई
शिवगंज (राजस्थान)

*

अक्षरसंधान—अर्चना प्रकाशन
१, मेहराहाउस, कालाबाग
अजमेर

मुद्रक—जॉब प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

परमेष्ठि नमस्कार विश्वप्रेम का प्रतीक है। परमेष्ठि भगवान् सकल विश्व पर निष्काम प्रेम एवं निष्काम करुणा भाव रखते हैं। अतः उनके प्रति किया गया नमस्कार विश्व-प्रेम का ही प्रतीक है। नमस्कार द्वारा परमेष्ठि भगवान के प्रति दर्शित विनय समग्र विश्व के जन्तुओं के प्रति प्रेम का प्रतीक है। विश्वप्रेमियों के प्रति अविनय वैर एवं द्वेषभाव का चिह्न है। विश्वप्रेम अमृत है। अतः नमस्कार द्वेषभाव-रूपी विष का प्रतिकार है, अशुभ राग-ज्वर का विनाशक है। विश्वप्रेम एवं विश्वप्रेमी दोनों के प्रति प्रेम बताने वाले, प्रेम जगाने वाले तथा अशुभ राग-द्वेष का विशोधन करने वाले परमेष्ठि नमस्कार को शास्त्रकारों ने जगत की माता अथवा पुण्य के जनक की उपमा प्रदान की है। परमेष्ठि नमस्कार के प्रति आदर भाव सुख का उत्पादक है एवं सर्व जगत के प्राणियों का रक्षक है। अनादरभाव अपने ही सुख का भक्षक है। सकल जगत के सुख के लिए ही नहीं किन्तु अपने स्वयं के सुख के लिए श्री परमेष्ठि नमस्कार सेवनीय है। सभी इसके सेवन से सुख, सौभाग्य एवं सद्गति पर्यन्त मुक्ति-रमणी के परमसुख प्राप्त करें, यही एक शुभाभिलाषा !

अनन्तचतुर्दशी —भद्रङ्कर विजय
संवत् २०२८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री पंचपरमेष्ठि नमस्कार महामंत्र

*

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंचनमुक्कारो
सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं
पढमं हवई मंगलं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महामंत्र की अनुप्रेक्षा

प्रथम किरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रम

१.	मन का बल मंत्र से विकासित होता है	१
२.	नमस्कार द्वारा मनोमयकोष की शुद्धि	२
३.	बुद्धि की निर्मलता एवं सूक्ष्मता	३
४.	नमस्कार सिद्धमंत्र है	४
५.	अभेद में अभय एवं भेद में भय	५
६.	नमस्कार मंत्र ही महाक्रिया योग है	६
७.	ऋणमुक्ति का मुख्य साधन नमस्कार	७
८.	राग द्वेष एवं मोह का क्षय	८
९.	निर्वेद एवं संवेग रस	१०
१०.	सेवन हेतु प्रथम भूमिका अभय, अद्वेष, अखेद	११
११.	नमस्कार मंत्र दोष की प्रतिपक्ष भावना	१२
१२.	इष्ट का प्रसाद एवं पूर्णता की प्राप्ति	१४
१३.	इष्ट तत्त्व की अचिन्त्य शक्ति	१५
१४.	मंत्रयोग की सिद्धि	१६
१५.	अमूर्त एवं मूर्त के मध्य का सेतु	१७
१६.	नमस्कार में सर्व संग्रह	१८
१७.	प्राण शक्ति एवं मनस्तत्त्व	१९
१८.	कर्म का निरनुबंध क्षय	२०
१९.	मोक्षमार्ग में पुष्टावलम्बन	२२
२०.	देह का द्रव्यस्वास्थ्य एवं आत्मा का भावस्वास्थ्य	२३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२१. प्रथम पद का अर्थ भावनापूर्वक जाप २५
२२. नवकार चौदहपूर्व अष्टप्रवचनमाता २६
२३. तत्त्वरुचि-तत्त्वबोध-तत्त्वपरिणति २७
२४. बहिरात्मभाव, अन्तरात्मभाव, परमात्मभाव २८
२५. गतिचतुष्टय से मुक्ति एवं अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति ३०
२६. शून्यता, पूर्णता एवं एकता का बोधक ३०
२७. इच्छायोग, शास्त्रयोग, सामर्थ्ययोग ३१
२८. हेतु स्वरूप एवं अनुबन्ध से शुद्ध लक्षण वाला धर्मानुष्ठान ३२
२९. आगम-अनुमान-ध्यानाभ्यास ३३
३०. धर्मकाय, कर्मकाय एवं तत्त्वकाय अवस्था ३४
३१ अमृत अनुष्ठान ३५
३२ भाव प्राणायाम का कार्य ३६
३३ भव्यत्व परिपाक के उपाय एवं आभ्यन्तर तप ३७
३४ समापत्ति, आपत्ति एवं सम्पत्ति ३८
३५ धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान ३९
३६ तपः स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान ४०
३७ अष्टांगयोग ४१
३८ क्षायिकभाव की प्रप्ति ४२
३९ भव्यत्व परिपाक के उपाय ४३
४० स्वदोषदर्शन एवं परगुणदर्शन ४४
४१ योग्य की शरण से योग्यता का विकास ४५
४२ दुष्कृत एवं सुकृत ४६
४३ आत्मा में स्थित अचिन्त्य शक्ति का स्वीकरण ४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४४. वीतराग अवस्था ही परम पूजनीय है ४७
४५. सच्चा सुकृतानुमोदन ४८
४६. अरिहंतादि की शरणगमन ४९
४७. स्वरूप बोध का कारण ५१
४८. आत्मतत्त्व का स्मरण ५२
४९. वीतराग अवस्था की सूझ-बूझ ५३
५०. शरणगमन द्वारा चित्त का समत्व ५५
५१. दया धर्मवृक्ष का मूल एवं फल ५६
५२. कर्मक्षय का असाधारण कारण ५७
५३. स्परूप की अनुभूति ५८

*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महामंत्र की अनुप्रेक्षा

मन का बल मंत्र से विकसित होता है।

नमस्कार मनुष्य की स्वयं की पूंजी है। नमन करना ही आनवमन एवं बुद्धि का तात्त्विक फल है। नमः देवी गुण एवं आध्यात्मिक सम्पत्ति है। दूसरों के गुण ग्रहण की शक्ति नमस्कार में निहित है। शरीर को मनसे अधिक महत्त्व नहीं मिलना चाहिए क्योंकि शरीर रथ है एवं मन अश्व है। मन रूपी अश्व को शरीर रूपी रथ के आगे जोतना चाहिए।

मन द्वारा ही तत्त्व की प्राप्ति होती है। शाश्वत सुख एवं सच्ची शान्ति अन्तर्मन से प्राप्तव्य है। हाथी का शरीर बड़ा एवं वजनदार होता है परन्तु वह कामी होता है। सिंह शरीर छोटा एवं हल्का होते हुए भी हाथी की अपेक्षा काम का विजेता होता है। अतः सिंह हाथी को भी जीत लेता है। मनुष्य का मन सिंह से भी अधिक बलवान होने से वह सिंह को भी वश में कर के पिंजरे में डाल देता है।

मन का बल मंत्र से विकसित होता है, मंत्रों में सर्वश्रेष्ठ नमस्कार मंत्र है। उससे काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेष एवं मोहादि आन्तरिक शत्रु जीते जाते हैं।

नमस्कार मंत्र में पाप से घृणा है एवं पापी के लिए दया है। पाप से घृणा आत्मबल का वर्द्धन करती है, नम्रता एवं निर्भयता लाती है। पापी से घृणा आत्मवल को कम करती है, अहंकार एवं कठोरता लाती है। सच्चा नमस्कार आत्मा में प्रेम एवं आदर बढ़ाता है; स्वार्थ एवं कठोरता का त्याग करवाता है।

जितना अहंकार होगा उतना ही सत्य का पालन कम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगा। जितना कम सत्य का पालन होगा उतनी ही जितेन्द्रियता कम होगी तथा काम, क्रोध एवं लोभ का वल अधिक होगा। नमस्कार से वाणी की कठोरता, मन की कृपणता एवं बुद्धि की कृतघ्नता नष्ट होती है तथा क्रमशः कोमलता, उदारता एवं कृतज्ञता विकसित होती है।

नमस्कार द्वारा मनोमय कोष की शुद्धि

नमस्कार में न्याय है, सत्य है, दान है एवं सेवाभाव निहित है। न्याय में क्षत्रियत्व है, सत्य है एवं उसके बहुमान में ब्रह्मज्ञान है। दान एवं दया में लक्ष्मी एवं व्यापार की सार्थकता है, सेवा एवं शुश्रूषा में संतोष गुण की सीमा है। नमस्कार द्वारा क्षत्रियों का क्षत्रियत्व, ब्राह्मणों का ब्रह्मज्ञान, वेश्यों का दान-गुण एव शूद्रों का सेवागुण एक साथ सार्थक होते हैं। समर्पण, प्रेम, परोपकार एवं सेवा भाव हो मानवमन एवं विकसित बुद्धि के सहजगुण है।

मनुष्य जन्म को श्रेष्ठ वनाने वाली यदि कोई वस्तु है तो वह पवित्र बुद्धि है। जीव, देह एवं प्राण तो प्राणी मात्र में हैं पर विकसित मन एवं विकसित बुद्धि तो मात्र मनुष्यों में ही है। सब कुछ हो पर सद्बुद्धि नहीं हो तो सब का दुरुपयोग हो दुर्गति होतो है। दूसरा कुछ भी नहीं हो पर यदि सद्बुद्धि ही हो तो उसके प्रभाव से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

मानव मन में अहंकार एवं आसक्ति ये दो बड़े दोष हैं। दूसरों के गुण देखने से एवं स्वयं के दोष देखने से अहंकार एवं आसक्ति नष्ट हो जाते हैं। नमस्कार दूसरों के गुण ग्रहण करने की एवं स्वयं के दोषों को दूर करने की क्रिया है। नमस्कार से सद्बुद्धि का विकास होता है एवं सद्बुद्धि का विकास होने से सद्गति हस्तामलकवत् हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमस्कार रूपी वज्र अहंकार रूपी पर्वत का नाश करता है। नमस्कार मानव के मनोमय कोष को शुद्ध करता है। अहंकार का स्थान मस्तक है। मनोमय कोष शुद्ध होने से अहंकार अपने आप विलीन हो जाता है।

नमस्कार में शुभकर्म, उपासना एवं ज्ञान इन तीनों का संगम है। शुभकर्म का फल सुख, उपासना का फल शान्ति एवं ज्ञान का फल प्रभुप्राप्ति है। नमस्कार के प्रभाव से इस जन्म में सुख, शान्ति एवं जन्मान्तर में परमात्मपद की प्राप्ति सुलभ होती है। कर्म-फल में विश्वासात्मक बुद्धि ही सद्बुद्धि है। सद्बुद्धि शान्तिदायक है। नमस्कार से उसका विकास होता है एवं उसके प्रभाव से हृदय में प्रकाश उद्बुद्ध होता है। ज्ञान विज्ञान का स्थान बुद्धि है एवं शान्ति-आनन्द का स्थान हृदय है। बुद्धि का विकास एवं हृदय में प्रकाश ही नमस्कार का असाधारण फल है।

बुद्धि की निर्मलता एवं सूक्ष्मता

मानव जन्म दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ पवित्र एवं तीव्र बुद्धि है। नमस्कार शुभकर्म होने से उसके द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है। नमस्कार में भक्ति की प्रधानता होने से बुद्धि विशाल एवं पवित्र बनती है। नमस्कार में सम्यक् ज्ञान होने से बुद्धि सूक्ष्म भी बनती है। इस प्रकार बुद्धि को सूक्ष्म, शुद्ध एवं तीक्ष्ण बनाने को सामर्थ्य नमस्कार में निहित है। परमपद की प्राप्ति हेतु बुद्धि के इन तीनों गुणों की आवश्यकता है। सूक्ष्मबुद्धि बिना नमस्कार के गुण जाने नहीं जा सकते, शुद्ध बुद्धि बिना नमस्कार के गुणों का स्मरण चित्त रूपी भूमि में सुदृढ़ नहीं किया जा सकता।

नमस्कार-कर्ता में निहित न्याय, नमस्कार्य तत्त्व में निहित दया, एवं नमस्कार क्रिया में निहित सत्य, बुद्धि को सूक्ष्म, शुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं स्थिर कर देता है। इस प्रकार बुद्धि को सूक्ष्म, शुद्ध एवं स्थिर करने का सामर्थ्य नमस्कार में निहित है।

नमस्कार में अहंकार के विरुद्ध नम्रता है, प्रमाद के विरुद्ध पुरुषार्थ एव हृदय की कठोरता के विरुद्ध कोमलता है। नमस्कार से एक ओर मलिन वासना व दूसरी ओर चित्त की चंचलता दूर होने से ज्ञान का घोर आवरण अहकार टल जाता है। नमस्कार की क्रिया श्रद्धा, विश्वास एवं एकाग्रता बढ़ाती है। श्रद्धा से तीव्रता, विश्वास से सूक्ष्मता एवं एकाग्रता से बुद्धि में स्थैर्य गुण बढ़ता है।

नमस्कार से साधक का मन परम-तत्त्व में लगता है एवं बदले में परम तत्त्व से बुद्धि प्रकाशित होती है। उस प्रकाश से बुद्धि के अनेक दोष जैसे मंदता, संकुचितता, संशय-युक्तता एवं मिथ्याभिमानिता आदि साथ नष्ट होते है।

नमस्कार मंत्र सिद्ध मंत्र है

नमस्कार एक मंत्र है एवं मंत्र का प्रभाव मन पर पड़ता है। मन से मानने का एवं बुद्धि से जानने का काम होता है। मंत्र से मन एवं बुद्धि दोनों परम-तत्त्व को समर्पित हो जाते हैं। श्रद्धा का स्थान मन है एवं विश्वास का स्थान बुद्धि है। ये दोनों जब प्रभु को समर्पित हो जाते हैं तब उन दोनों के दोष जल कर भस्मीभूत हो जाते हैं।

बुद्धि स्वार्थांधता के कारण मंद, कामांधता के कारण कुबुद्धि, लोभान्धता के कारण दुर्बुद्धि, क्रोधान्धता के कारण संशयी, मानान्धता के कारण मिथ्या एवं कृपणान्धता के कारण अतिशय संकुचित हो जाती है। नमस्कार रूपी विद्युत जब चित्ताकाश में कौंधती है तब स्वार्थ से लगाकर काम, क्रोध, लोभ, मान, माया एवं दर्प आदि सभी दोष दग्ध हो जाते हैं एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्त चारों दिशाओं से निर्मल हो प्रकाशित हो उठता है। समता, क्षमा, संतोष, नम्रता, उदारता एव निस्वार्थता आदि गुण उसमें से प्रकट होते हैं।

शब्द नमस्कार का शरीर है. अर्थ नमस्कार का प्राण है एवं भाव नमस्कार की आत्मा है। नमस्कार का भाव जब चित्त को स्पर्श करता है तब मानव को सम्प्राप्त आत्मविकास का अमूल्य अवसर धन्य होता है। नमस्कार से आरम्भ हुई भक्ति अन्त में जब समर्पण में पूर्ण होती है तब मानव स्वजन्म की सार्थकता का अनुभव करता है।

नमस्कार मंत्र सिद्ध मंत्र है। इस मंत्र का स्मरण मात्र करने से आत्मा में जीवराशियों के ऊपर स्नेह परिणाम जाग्रत होता है। अतः स्वतंत्र अनुष्ठान या पुरश्चरणादि विधि की भी जरूरत नहीं पड़ती। उसका मुख्य कारण पचपरमेष्ठि भगवान् का अनुग्रह-कारक सहज स्वभाव है तथा है प्रथम परमेष्ठि अरिहन्त भगवान का सिद्ध संकल्प कि "जीव मात्र का आध्यात्मिक कल्याण हो"।

अभेद में अभय एवं भेद में भय

गुण बहुमान का परिणाम अचिन्त्य शक्ति से युक्त कहा गया है। निश्चय से बहुमान का परिणाम एवं व्यवहार से बहुमान का सर्वोत्कृष्ट विषय दोनों के मिलने से कार्य-सिद्धि होती है।

गुणादि का स्मरण करने से रक्षा होती है। उससे वस्तु स्वभाव का नियम कार्य करता है। ध्याता अन्तरात्मा जब ध्येय-परमात्मा का ध्यान करती है तब चित्त में ध्याता-ध्येय-ध्यान इन तीनों की एकता रूपी समापत्ति होती है, जिससे क्लिष्ट कर्म का अवसान होता है एवं अन्तरात्मा को अद्भुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शान्ति मिलती है, उसी का नाम मंत्र से रक्षा है।

दूसरों के सुकृत की अनुमोदनारूपसुकृत अखंडित शुभ भाव का कारण है। परम तत्त्व के प्रति समर्पण भाव एक तरफ नम्रता, दूसरी तरफ निर्भयता लाता है एवं दोनों के परिणाम स्वरूप निश्चिन्तता का अनुभव होता है।

अभेद में अभय है एवं भेद में भय है। नमस्कार के प्रथम पद में अरिहं शब्द है, वह अभेद-वाचक है एवं उससे किया हुआ नमस्कार अभय-कारक है। अभयप्रद अभेदवाचक अरिहं पद का पुनः पुनः स्मरण त्राणकारी, अनर्थहारी तथा आत्म ज्ञान रूपी प्रकाशकारी होने से प्रत्येक विवेकी के लिए आश्रय-णीय है।

नमस्कार मंत्र महाक्रिया योग है

पंचमंगल रूप नमस्कार ही महाक्रियायोग है क्योंकि उसमें दोनों प्रकार का तप, पांचों प्रकार का स्वाध्याय एवं परमोच्च तत्त्वों का प्रणिधान निहित है। बाह्य-अभ्यंतर तप ही कर्म रोग की चिकित्सा रूप बनता है, पाँचों प्रकार का स्वाध्याय महामोह रूपी विष को उतारने हेतु मंत्र के समान बन जाता है एवं परमेष्ठि का प्रणिधान भवभय का निवारण करने हेतु परम-शरण रूप बनता है।

नमस्कार रूपी पंच-मंगल की क्रिया ही अभ्यन्तर तप, भाव, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान रूप महाक्रियायोग है। इसका स्मरण अविद्यादि क्लेशों का नाश करता है एवं चित्त के अखंड समाधि रूप फल को उत्पन्न करता है। क्लेश का नाश दुर्गति का क्षय करता है एवं समाधिभाव सद्गति का सर्जन करता है।

नमस्कार में 'नमो' पद पूजा के अर्थ में है एवं पूजा-द्रव्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाव संकोच अर्थ में है। द्रव्य-संकोच हाथ, सिर, पांव आदि का नियमन एवं भाव-सकोच मन का विशुद्ध व्यापार है।

दूसरे प्रकार से नमो स्तुति, स्मृति एवं ध्यानपरक तथा दर्शन, स्पर्शन एवं प्राप्ति कारक भी है। स्तुति द्वारा नाम ग्रहण, स्मृति द्वारा अर्थ-भावन एवं ध्यान द्वारा एकाग्र चिन्तन होता है। दर्शन द्वारा साक्षात्करण, स्पर्शन द्वारा विश्रान्ति-गमन एवं प्राप्ति द्वारा स्वसंवेद्य-अनुभवन भी होता हैं। नाम ग्रहण आदि द्वारा द्रव्यपूजा एवं अर्थभावन, एकाग्र चिन्तन तथा साक्षात्करणादि द्वारा भाव पूजा होती है।

जिस प्रकार जल द्वारा दाह का शमन, तृषा का निवारण एवं पंक का क्षालन होता है वैसे 'नमो' पद के अर्थ की पुनः पुनः भावना द्वारा कषाय के दाह का शमन होता है विषय की तृषा का निवारण होता है एवं कर्म का पंक क्षालित हो जाता है। जैसे अन्न द्वारा क्षुधा की शान्ति, शरीर की तुष्टि एव बल की पुष्टि होती है वैसे ही 'नमो' पद द्वारा विषय-क्षुधा का शमन, आत्मा के सतोष आदि गुणों की तुष्टि तथा आत्मा के बल-वीर्य-पराक्रम आदि गुणों की पुष्टि होती है।

ऋण मुक्ति का मुख्य साधन नमस्कार

मानव जीवन का सच्चा ध्येय ऋणमुक्ति है। ऋण मुक्ति का मुख्य साधन नमस्कार है नमस्कार। विवेक ज्ञान का फल है एवं विवेक ज्ञान समाहित चित्त का परिणाम है। परमेष्ठि स्मरण से चित्त समाधिवान् बनता है। परमेष्ठि भगवान् का यह संकल्प है कि सभी साधक समाहित चित्तवाले बनें। अतः उनका स्मरण एवं नाम ग्रहण साधक के चित्त को समाधिवान् बनाता है। समाधियुक्त चित्त में विवेक स्फुरित होता है एवं विवेकी चित्त में ऋणमुक्ति की भावना प्रकट होती है। ऋण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्ति की भावना में से प्रकट नमस्कृति ऋणमुक्ति यानि सच्चे अर्थ मे कर्ममुक्ति को प्राप्त करवाती है।

नमस्कार मंत्र द्वारा पंचमंगल महाश्रुतस्कंध रूप श्रुत ज्ञान का आराधन होता है। उससे होती पंचपरमेष्ठि की स्तुति द्वारा सम्यक् दर्शन गुण का आराधन होता है एवं त्रिकरण योग से होती नमन क्रिया द्वारा आंशिक चारित्रगुण का आराधन होता है।

ज्ञानगुण पाप पुण्य को समझाता है, दर्शनगुण पाप की गर्हा एवं पुण्य की अनुमोदना करवाता है एवं चारित्रगुण पाप का परिहार तथा धर्म का सेवन करवाता है। ज्ञान से धर्म मंगल समझा जाता है, दर्शन से वह श्रद्धेय होता है एवं चारित्र से धर्म मंगल जीवन में जीया जाता है। गुणों में उपादेयता की बुद्धि ही सच्ची श्रद्धा है। उपादेयता की बुद्धि गुणों के प्रति उपेक्षा-बुद्धि का नाश करती है। गुणों के भण्डार होने से पंच परमेष्ठि को किया गया नमस्कार गुणों में उपादेयता की बुद्धि को पुष्ट करता है। पंच परमेष्ठि ने पाँच विषयों को त्यागा है चार कषायों का जीता है, वे पाँच महाव्रत एवं पाँच आचारों से सम्पन्न हैं। आठ प्रवचनमाता एवं अठारह हजार शीलांग-रथ के वाहक हैं। उनको नमस्कार करने से उनमें विद्यमान सभी गुणों को नमस्कार होता है। परिणाम स्वरूप गुणों के प्रति अनुकूलता की बुद्धि एवं दोषों के प्रति प्रतिकूलता की सन्मति जाग्रत होती है।

राग, द्वेष एवं मोह का क्षय

नवपदयुक्त नमस्कार से नवम पाप स्थान लोभ एवं अठारहवाँ पाप स्थान मिथ्यात्वशल्य नष्ट होते हैं। नमस्कार सांसारिक लोभ का शत्रु है क्योंकि इसमें जिन्हें नमस्कार किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता है वे पंच परमेष्ठि भगवान् सांसारिक सुख को तृणवत् समझ उसका त्याग करने वाले हैं एवं मोक्ष सुख को प्राप्त करने हेतु परम पुरुषार्थ करने वाले हैं। नमस्कार जैसे सांसारिक सुख की वासना एवं तृष्णा का त्याग करवाता है वैसे ही मोक्ष सुख की अभिलाषा एवं उसके लिए सर्व प्रकार के प्रयत्न करना सिखाता हैं।

नमस्कार पाप में पाप-बुद्धि एवं धर्म में धर्म बुद्धि सिखाने वाला होने से मिथ्यात्वशल्य नाम के पाप स्थानक को उच्छेदित कर देता है एवं शुद्ध देव, गुरु तथा धर्म के ऊपर प्रेम जाग्रत कर सम्यक्त्व रत्न को निर्मल बनाता है। नमस्कार से सांसारिक विरक्ति जागती है, जो लोभ, कषाय को नष्ट भ्रष्ट कर देती है एवं नमस्कार से भगवद् बहुमान जाग्रत होता है जो मिथ्यात्वशल्य को दूर कर देता है।

राग-दोष का प्रतिकार ज्ञान-गुण के द्वारा होता है। ज्ञानी पुरुष निष्पक्ष होने से स्वयं में निहित दुष्कृत्यों को देख सकता है निरन्तर उसकी निन्दा गर्हा करता है एवं उससे स्वयं की आत्मा को दुष्कृत्यों से उबार लेता है।

द्वेष-दोष का प्रतिकार दर्शन गुण द्वारा होता है। सम्यक् दर्शन गुण को धारण करने वाला पुण्यात्मा नमस्कार में स्थित अरिहंतादि गुणों को, सत्कर्मों को एवं विश्व-व्यापी उपकारों को देख सकता है। अतः उसके विषय में आनन्द को धारण करता है। सत्कर्मों एवं गुणों की अनुमोदना तथा प्रशंसा द्वारा स्वयं की आत्मा को सन्मार्गाभिमुख कर सकता है।

ज्ञान-दर्शन गुण के साथ जब चारित्र गुण मिल जाता है तब मोह दोष का समूल नाश हो जाता है। मोह दूर हो जाने से पाप में निष्पापिता एवं धर्मों में अकर्तव्यता की बुद्धि दूर हो जाती है। उसके दूर हो जाने से पाप में प्रवर्तन एवं धर्म में प्रमाद एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरुचि रुक जाती है। पाप का परिवर्तन एवं धर्म का सेवन अप्रमत्तता से होता है। वह आत्मा चरित्र एवं धर्म रूपी महाराजा के राज्य की विश्वासपात्र सेविका बनती है एवं मोक्ष साम्राज्य के सुख का अनुभव करती है।

नवकार में 'सम्यक् ज्ञान,' 'सम्यक् दर्शन' एवं 'सम्यक्-चारित्र' इन तीनों गुणों की आराधना निहित होने से दुष्कृत गर्हा, सुकृत की अनुमोदना एवं प्रभु आज्ञा का पालन प्रतिदिन बढ़ता जाता है जिससे मुक्ति सुख का अधिकारी बना जाता है।

निर्वेद एवं संवेग रस

नमस्कार में निर्वेद एवं संवेग रस का पोषण होता है। निगोद आदि में स्थित जीवों के दुःख का विचार कर चित्त में संसार के प्रति उद्वेग धारण करना ही निर्वेदरस है, एवं सिद्ध गति में स्थित सिद्ध भगवान् के सुख को देखकर आनन्द का अनुभव होना ही संवेगरस है। दुःखी जीवों की दया एवं सुखी जीवों के प्रमोद द्वारा तीनों दोष राग द्वेष एवं मोह का निग्रह होता है।

सभी दुःखी आत्माओं के दुःख से भी अधिक नरक के नारकीय जीव का दुःख बढ़ जाता है। उससे भी अधिक दुःख निगोद में स्थित है। सभी सुखी आत्माओं के सुख से अधिक अनुत्तर के देवों का सुख चढ़ जाता है, उससे भी एक सिद्ध की आत्मा का सुख अनन्त गुण अधिक होता है। निगोद का एक जीव जो दुःख भोग करता है, उस दुःख की निगोद के अतिरिक्त सभी दुःखी जीवों के एक भी मूल दुःख की समता नहीं कर सकता है। ~~जीव का~~ देव एवं मनुष्य के त्रिकाल सुख के अनन्त गुणाकृत अथवा वर्गकृत रूप से भी सिद्ध जीव का एक सुख बहुत अधिक होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयं से अधिक दुःखी के दुःख को दूर करने की बुद्धि रूप दया के परिणाम से स्वयं का दुःख एवं उससे उत्पन्न दीनता नष्ट होती है। स्वयं से अधिक सुखी का सुख देखकर उसमें हर्ष अथवा प्रमोदभाव धारण करने से स्वयं के सुख का मिथ्यागर्व अथवा दर्प गल जाता है।

दीनता अथवा दर्प, भय अथवा द्वेष, खेद अथवा उद्वेग आदि चित्त के दोषों का निवारण करने हेतु गुणाधिकृत की भक्ति एवं दुःखाधिकृत की दया ही सरल एवं सर्वोत्तम उपाय है, उसे ही शास्त्र की परिभाषा में संवेग, निर्वेद गिनाया गया है। नमस्कार में दोनों प्रकार के रस पोषित होने से जीव की मानसिक अशान्ति एवं असमाधि उसके स्मरण से दूर हो जाती है।

सेवन हेतु प्रथम भूमिका, अभय-अद्वेष-अखेद

नमस्कार मन्त्र की साधना से शुद्ध आत्माओं के साथ कुछ अभेद की साधना होती है। जहाँ अभेद वहाँ अभय–यह नियम है। भेद से भय एवं अभेद से अभय–यह अनुभव सिद्ध है। भय ही चित्त की चंचलता रूप बहिरात्मदशा रूप आत्मा का परिणाम है। अभेद के भावन से वह चंचलता दोष नष्ट होता है एवं अन्तरात्मदशा रूप निश्चलता गुण उत्पन्न होता है।

अभेद के भावन से अभय की तरह अद्वेष भी साधित होता है। द्वेष अरोचक भाव रूप है वह अभेद के भावन से चला जाता है। अभेद के भावन से जैसे भय एवं द्वेष टल जाते हैं वैसे ही खेद भी नष्ट होता है। खेद प्रवृत्ति में श्रान्त रूप है। जहाँ भेद वहाँ खेद एवं जहाँ अभेद वहाँ अखेद अपने आप आ जाता है। नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से जैसे अभेद बुद्धि दृढ़ होती जाती है वैसे ही भय, द्वेष एवं खेद-दोष चले जाते हैं एवं उसके स्थान पर अभय, अद्वेष एवं अखेद गुण आता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भय, द्वेष एवं खेद जो आत्मा के तात्त्विक स्वरूप के अज्ञान से उत्पन्न होते थे, उस आत्मा के शुद्ध एवं तात्त्विक स्वरूप का सम्यक् ज्ञान होने के साथ दूर हो जाते हैं। नमस्कार मन्त्र में स्थित पाँचों परमेष्ठि शुद्ध स्वरूप को प्राप्त होने से उनको किया जाने वाला नमस्कार जब चित्त में परिणमित होता है तब आत्मा में सबके साथ आत्मीयता से तुल्यता का ज्ञान तथा स्वरूप से शुद्धता का ज्ञान आविर्भूत होता है एवं वह आविर्भाव होने के साथ ही भय, द्वेष एवं खेद चले जाते हैं।

नमस्कार मन्त्र वैराग्य एवं अभ्यास स्वरूप भी है। वैराग्य निर्भ्रान्त ज्ञान का फल है एवं अभ्यास चित्त की प्रशान्तवाहिता का नाम है। चित्त जब प्रशमभाव को प्राप्त करता है तब वह विश्वमैत्रीमय बनता है, जब चित्त में वैरविरोध का एक अंश भी नहीं रहता तब अभ्यास का फल गिना जाता है। वैराग्य ज्ञान रूप है एवं अभ्यास प्रयत्न रूप है। ज्ञान की पराकाष्ठा ही वैराग्य एवं समता की पराकाष्ठा ही अभ्यास कहलाता है। ज्ञान एवं समता जब पराकाष्ठा तक पहुँचती है तब मोक्ष सुलभ बनता है।

नमस्कार मन्त्र दोष की प्रतिपक्ष भावना

श्री नमस्कार मन्त्र दोष की प्रतिपक्ष भावना स्वरूप भी है। योगशास्त्र में कहा गया है कि—

यो यः स्याद् बाधको दोषस्तस्य तस्य प्रतिक्रियाम् ।
चिन्तयेद् दोषमुक्तेषु, प्रमोदं यतिषु व्रजन् ॥

योगशास्त्र, प्र० ३ श्लोक ॥ ३६

स्वोपज्ञ टीकाकार महर्षि इस श्लोक के विवरण में कहते हैं कि—

सुकरं हि दोषमुक्त-मुनिदर्शनेन प्रमोदादात्मन्यपि दोषमोक्षणम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो दोष स्वयं को बाधक प्रतिभासित होता है उस दोष को दूर करने का उपाय उस दोष से मुक्त हुए मुनियों के गुणों के विषय में प्रमोद भाव धारण करना है।

दोष-मुक्त यतियों के गुणों के विषय में प्रमोद भाव को धारण करने वाला जीव उन दोषों से स्वयमेव मुक्त बन जाता है। पंच परमेष्ठि नमस्कार मन्त्र का स्मरण परमेष्ठि पद में विराजमान महामुनियों के गुणों के विषय में बहुमान भाव उत्पन्न करता है जिससे स्मरण करने वाले के अन्तःकरण में स्थित समस्त दोष स्वयमेव उपशान्ति को प्राप्त होते हैं।

काम दोष का प्रतिकार स्थूलिभद्र मुनि का ध्यान है, क्रोध दोष का प्रतिकार गजसुकुमाल मुनि का ध्यान है, लोभ दोष का प्रतिकार शालिभद्र एवं धन्य कुमार में स्थित तप, सत्य, सन्तोष आदि गुणों का ध्यान है। इस प्रकार मान को जीतने वाले बाहुबलि एवं इन्द्रभूति, मोह को जीतने वाले जम्बूस्वामी एवं वज्रकुमार, मद, मान एवं तृष्णा को जीतने वाले मल्लिनाथ, नेमिनाथ एवं भरत चक्रवर्ती आदि महान् आत्माओं का ध्यान उन-उन दोषों को जीतने वाला होता है।

श्री नमस्कार मन्त्र में मद, मान, माया, लोभ, क्रोध, काम एवं मोह आदि दोषों पर विजय प्राप्त करने वाले समस्त महापुरुषों का ध्यान होने से ध्याता के वे सभी दोष समूल विनष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार नमस्कार मन्त्र दोषों की प्रति-पक्ष भावना रूप बन गुणकारी होता है।

इसी अर्थ को बताने वाला नीचे का एक श्लोक एवं उसकी भावना नमस्कार की ही अर्थ-भावना स्वरूप बन जाती है—

धन्यास्ते वंदनीयास्ते, तैस्त्रैलोक्यं पवित्रितम्।
यैरेष भुवनक्लेशी काम-मल्लो विनिर्जितः ॥

धर्मबिन्दु टीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे पुरुष धन्य हैं, वन्दनीय हैं एवं उन पुरुषों ने तीनों लोकों को पवित्र किया है जिन्होंने काम रूपी मल्ल को जीत लिया है।

यही क्रोधरूपी मल्ल, लोभरूपी मल्ल, मोहरूपी मल्ल, मानरूपी मल्ल एवं दूसरे भी कठोर दोषरूपी मल्ल जिन्होंने जीत लिए हैं वे पुरुष भी धन्य, वंद्य एवं त्रैलोक्य पूज्य हैं, ऐसी भावना की जा सकती है। ये सभी भावनाएँ श्री नमस्कार मन्त्र के स्मरण के समय हो सकती है।

इष्ट का प्रसाद एवं पूर्णता की प्राप्ति

मन्त्र जप में नित्य नया अर्थ होता है, शब्द वे के वे ही रहते हैं एवं अर्थ नित्य नूतन प्राप्त होता है। अन्न वही होता है पर भूख के प्रमाण में हमें नित्य नया स्वाद अनुभव होता है। यही बात तृषातुर को जल में एवं प्राण धारण करने वाले जीव को पवन में अनुभव होती हैं।

तृषा तथा क्षुधा की शान्ति एवं प्राणों को टिकाने की शक्ति जब तक जल, अन्न एवं पवन में स्थित है तब तक उनकी उपयोगिता एवं नित्य नवीनता मानवी मन में टिकी रहती है। नमो मन्त्र का जाप भी आत्मा की क्षुधा तथा तृष्णा को शान्त करने वाला है एवं आत्मा के बल-वीर्य को बढ़ानें वाला है। इसी से उसकी उपयोगिता एवं नित्य नूतनता स्वयमव अनुभव होती है।

नमस्कार मन्त्र का जाप एक तरफ इष्ट का स्मरण, चिन्तन एवं भावन करवाता है एवं दूसरी ओर नित्य नूतन अर्थ की भावना जाग्रत करता है अतः उस मन्त्र को मात्र अन्न, जल एवं पवन के तुल्य ही नहीं किन्तु पारसमणि, चिन्तामणि, कल्पवृक्ष एवं काम कुम्भ से भी ज्यादा मूल्यवान् माना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्य के मन में नरक को स्वर्ग एवं स्वर्ग को नरक बनाने का सामर्थ्य है। उत्तम मन्त्र द्वारा वह नरक को स्वर्ग बना सकता है। श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक उत्तम मन्त्र का जाप करने वाले सदा सुरक्षित हैं। नाम एवं नमस्कार मन्त्र द्वारा इष्ट का प्रसाद एवं पूर्णता की प्राप्ति होती है। इष्ट का नाम सभी विपदाओं में से जीव को पार उतारने वाला सर्वोत्तम साधन है। इष्ट का नमस्कार सभी पापवृत्ति एवं पापप्रवृत्ति का समूल विनाश करता है।

इष्ट तत्त्व की अचिन्त्य शक्ति

धर्म मात्र का ध्येय आत्म ज्ञान है। मन्त्र के ध्यान मात्र से वह सिद्ध होता है। मन्त्र का रटन एक ओर हृदय का मिलन, ईर्ष्यासूयादि को साफ करवाने का कार्य करता है, दूसरी ओर तन, मन, धन की आधि-व्याधि एवं उपाधियों को टाल देता है।

शरीर की व्याधि असाध्य हो एवं कभी न टले तो भी मन की शान्ति एवं बाह्य व्याधि मात्र को समता से सहन करने की शक्ति तो वह देता ही है। वह यह कार्य कैसे सम्पादित करता है यह प्रश्न यहाँ उचित नहीं है। कितने ही प्रश्न एवं उनके उत्तर बुद्धि से या बुद्धि को दे दिए जायं ऐसे होते नहीं। हृदय की बात हृदय ही जान सकता है। श्रद्धा की बात श्रद्धालु ही समझ सकता है। परमात्म तत्त्व एवं उसकी शक्ति को न मानने वाले के लिए मन याने स्वयं का अहं ही परमात्मा का स्थान लेता है। सर्व समर्थ की शरण लिए बिना अहं कभी टलता नहीं एवं जहाँ तक अहं नहीं टलता शान्ति का अनुभव आकाशकुसुमवत् होता है।

पू० उपाध्याय यशोविजयजी महाराज श्री ने अध्यात्मसार ग्रन्थ के अनुभवाधिकार में कहा है कि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शान्ते मनसि ज्योतिः प्रकाशते शान्तमात्मनः सहजम् ।
भस्मीभवत्यविद्या, मोहध्वान्तं विलयमेति ।

मन जब शान्त होता है तब शान्त चित्त में आत्मा का सहज शुद्ध स्वभाव प्रकाशित होता है, उस समय अनादि-कालीन अविद्या, मिथ्यात्वमोहरूप अन्धकार विनष्ट होता है।

परमात्मा एवं उसके नाम का लाभ सभी को नहीं पर सदाचारी, श्रद्धावान् एवं भक्तहृदय को ही शीघ्र मिलता है। परमात्मा की अचिन्त्य शक्ति पर मनुष्य को जब पूर्ण श्रद्धा हो जाती है, तब उसकी सातों धातुओं का रूपान्तर होता है। अतः परमात्मा का नाम ही भक्त के लिए ब्रह्मचर्य की दसवीं सुरक्षा पंक्ति है। नौ सुरक्षा पंक्तियों से भी इसका सामर्थ्य अपेक्षाकृत अधिक है।

मंत्रयोग की सिद्धि

मन्त्र शब्दों का समूह है जिनका कोई अर्थ निकलता हो। इन शब्दों के अर्थ का साकार होना ही मन्त्र का सिद्ध होना गिना जाता है। शब्द से वायु पर आघात होता है। जब कोई शब्द बोला जाता है तब अनन्त वायु रूपी महा सागर में तरंगे पैदा होती हैं। तरंगों से गति, गति से ऊष्मा एवं ऊष्मा से स्वास्थ्य सुधरता है। प्राणायाम का भी यही उद्देश्य है एवं वह उद्देश्य मन्त्र जाप से सिद्ध होता है। मन्त्र का जाप हृदय में से दूषित भावनाओं को बाहर निकाल अन्तःकरण को शुद्ध करता है। मन्त्रजाप से ऊष्मा बढ़ने से मस्तिष्क की गुप्त समृद्धि का कोष खुल जाता है एवं इसके द्वारा मनोरथ पूरा होता है।

शब्द-रचना की शक्ति अत्यन्त प्रबल होती है। जो काम वर्षों में नहीं हो सकता, वह कार्य योग्य शब्द रचना द्वारा थोड़े ही क्षणों में सम्पन्न हो सकता है। नमस्कार मन्त्र इस कारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महान् मन्त्र गिना जाता है एवं महान् से महान् असाध्य दुस्साध्य कार्य भी इससे सिद्ध होते देखे जाते हैं।

उत्साहान्निश्चयात् धैर्यात्, संतोषात्तत्त्वदर्शनात्।
मुनेर्जनपदत्यागात्, षड्भिर्योगः प्रसिध्यति ॥

दूसरे योगों की भाँति मन्त्र योग की सिद्धि भी उत्साह से, निश्चय से, धैर्य से, सन्तोष से, तत्त्वदर्शन से एवं लोक सम्पर्क के त्याग से हो सकती है।

अमूर्त एवं मूर्त के मध्य का सेतु

'नमो' धर्मवृक्ष का मूल है, धर्मनगर का द्वार है, धर्म-प्रासाद का स्तम्भ है, धर्मरत्न का स्थान है, धर्म-जगत का आधार है एवं है धर्मरस का पात्र। नमस्कार रूपी मूल बिना धर्मवृक्ष सूख जाता है, नमस्काररूपी द्वार बिना धर्मनगर में प्रवेश अशक्य है। नमस्काररूपी स्तम्भ के बिना धर्म-प्रासाद टिक नहीं सकता है, नमस्काररूपी धारक बिना धर्मरत्नों का रक्षण होता नहीं, नमस्काररूपी आधार बिना धर्मजगत निराधार है। नमस्काररूपी पात्र बिना धर्मरस टिक नहीं सकता एवं धर्मरस का स्वाद चखा नहीं जा सकता।

'विनय-मूलो धम्मो'—धर्म का मूल विनय है। नमस्कार विनय का ही एक प्रकार है। गुणानुराग धर्मद्वार है एवं नमस्कार गुणानुराग की क्रिया है। श्रद्धा धर्ममहल का स्तम्भ है, नमस्कार इसी श्रद्धा एवं रुचि का दूसरा नाम है। मूलगुण एवं उत्तरगुण रत्न हैं, नमस्कार उनका मूल्यांकन है। चतुर्विध संघ एवं मार्गानुसारी जीव ही धर्मरूपी जगत है, उसका आधार नमस्कार भाव है। समता भाव, वैराग्य भाव एवं उपशम भाव धर्म का रस है एवं नमस्कार ही उस रसा-स्वादन का पात्र अथवा आधार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनय, भक्ति, श्रद्धा, रुचि, आर्द्रता, निरभिमानता आदि नमस्कार भाव के ही विभिन्न पर्यायवाची शब्द हैं। अतः नमस्कार भाव ही धर्म का मूल, द्वार, पीठ, निधान, आधार एवं पात्र है। अमूर्त एवं मूर्त के मध्य एक मात्र पुल, सेतु अथवा संधि नमस्कार ही है।

नमस्कार में सर्व संग्रह

नवकार में चौदह नकार है। (प्राकृत भाषा में 'न' एव 'ण' दोनों विकल्प से आते हैं) ये नकार चौदहपूर्वों को बताते हैं एवं यह नवकार चौदहपूर्वरूपी श्रुतज्ञान का सार है ऐसी प्रतीति करवाते हैं। नमस्कार में बारह अकार है, वे बारह अङ्गों को बताते हैं। नमस्कार में नौ णकार है। वे नवनिधियों को बताते हैं।

नमस्कार के पाँच नकार पंचज्ञान को, आठ सकार अष्ट सिद्धियों को, नवमकार चार मंगल एवं महाव्रतों को, तीन सकार तीनलोक को, तीन हकार आदि मध्य एवं अन्त्य मंगल को, दो चकार देश-चारित्र एवं सर्व-चारित्र को दो ककार दो प्रकार के घाती अघाती कर्मों को, पाँच पकार पाँच परमेष्ठि को तीन रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपी तीन रत्नों को, तीन मकार तीन योगों एवं उनके विग्रह को, दो गकार गुरु एवं परम-गुरु याने दो गुरुओं को, दो एकार सप्तम स्वर होने से सात राज ऊर्ध्व एवं सात राज अधो अर्थात् चौदह राजलोक को सूचित करते हैं।

मूल मन्त्र के चौबीस गुरु अक्षर चौबीस तीर्थंकरों रूपी परम गुरुओं एवं ग्यारह लघु अक्षर वर्तमान तीर्थपति के ग्यारह गण-धर भगवान् रूपी गुरुओं को भी बताने वाले हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राणशक्ति एवं मनस्तत्त्व

नमस्कार रूपी क्रिया द्वारा श्वास का मनस्तत्त्व में रूपान्तर हो जाता है। ज्यों-ज्यों नमस्कार के जाप की संख्या बढ़ती जाती है त्यों-त्यों आध्यात्मिक उन्नति होने के साथ साधक श्वास प्रश्वास को मन की ही क्रिया के रूप में जान सकता है। उससे मन के संकल्प विकल्प शमित हो जाते हैं।

प्राण शक्ति द्वारा मन को सहज ही संयम में लेती क्रिया प्रणाली अनन्त को पहुँचने का सरल से सरल, अत्यन्त ही प्रभावी एवं सम्पूर्ण प्रकार से वैज्ञानिक मार्ग है। नमस्कार की क्रिया एवं जाप द्वारा इस मार्ग की सरल रूप से सिद्धि होती जाती है। अतः जाप द्वारा होती नमस्कार की क्रिया का मार्ग अनन्त परमात्मस्वरूप को प्राप्त करने का द्रुत, सुनिश्चित एवं अनेक महापुरुषों द्वारा अनुभव से प्रकाशित राजमार्ग है। तुलसीदासजी का भी कथन है कि–

नामु सप्रेम जपत अनयासा, भगत होहिं मुद मंगल वासा।
राम एक तापस तिय तारी, नाम कोटि खल कुमति सुधारी।
सहित दोष दुख दास दुरासा, दलइ नाम जिमि रवि निसि नासा।
भाय कुभाय अनख आलसहूँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

मन्त्र के शब्दों में होता प्राण का विनियोग (प्रवृत्ति निवृति दो व्यापार) कोई एक अर्थ में ही समाप्त नहीं होता शास्त्र निर्दिष्ट सभी अर्थों में व्याप्त हो जाता है। मन्त्र जाप द्वारा शरीर, प्राण (यहाँ प्राण श्वासोच्छ्वास शब्द के लिए संकेतित है।) इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि एवं प्रज्ञा पर्यन्त सभी करण शुद्धि को अनुभव करते हैं एवं जीवात्मा को आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति पर्यन्त ले जाते हैं। मन्त्र के शब्दों के द्वारा मन-बुद्धि आदि का प्राण तत्त्व में रूपान्तर होता है एवं प्राण तत्त्व सीधी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मानुभूति करवाता है (मनः त्रायते--मन को रक्षित करता है मनसः त्रायते—प्राण की मन से रक्षा।) प्राण-तत्त्व आत्मा के वीर्य गुण के साथ निकट का सम्बन्ध स्थापित करता है।

शब्द के दो अर्थ होते हैं, एक वाच्यार्थ एवं दूसरा लक्ष्यार्थ। वाच्यार्थ का सम्बन्ध शब्द कोष के साथ है। लक्ष्यार्थ का सम्बन्ध साक्षात् जीवन के साथ है। पंच मंगल का लक्ष्यार्थ प्राणतत्त्व की शुद्धि द्वारा साक्षात् जीवनशुद्धि करवाने वाला होता है।

कर्म का निरनुबन्ध क्षय

जब चित्त में अरति, उद्वेग एवं परिश्रान्ति का भास हो तब जानना चाहिए कि मोहनीय कर्म का उदय एवं उसके साथ अशुभ कर्म का विपाक जाग्रत हो गया है। उसे टालने का उपाय पंच मंगल है ऐसा शास्त्रकारों ने कहा है। पंच मंगल का शान्त चित्त से एकाग्रतापूर्वक जाप करने से अशुभ कर्म-विचालित हो शुभ कर्म में परिवर्तित हो जाते हैं। उसका यह अर्थ है कि उदित कर्म अवश्य भोगना पड़ता है, उसे ज्ञानी ज्ञान से, समता से एवं अज्ञानी अज्ञान से, आर्त रौद्र ध्यान से भोगते हैं। ज्ञानी को नवीन कर्म बन्ध नहीं होता पर अज्ञानी को होता है।

सत्ता में से अर्थात् संचित में से उदय में आते हुए कर्म में वर्तमान के शुभाशुभ भाव से अन्तर पड़ सकता है। पंच मंगल के जाप एवं स्मरण में ज्ञानी के ज्ञान गुण से, साधु के संयम गुण से, तपस्वियों के तप गुण से अनुमोदना होती है एवं उन-उन गुणों का मानसिक आसेवन होता है। उनसे जो शुभ भाव जागता है, उससे अशुभ कर्म की स्थिति एवं रस घट जाता है एवं शुभ रस बढ़ जाता है। उदयागत कर्म समताभाव से अनुभव होने से उसका निरनुबन्धक्षय हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंच मंगल से भाव धर्म का आराधन होता हैं क्योंकि उस रत्नत्रयधरों के विषय में भक्ति प्रकट होती है, उनकी आज्ञा पालन करने का उत्साह जागता है, एक सबके शुभ की ही चिन्ता का भाव प्रकट होता है एवं अशुभ संसार के प्रति निर्वेद की भावना जन्म लेती है। कहा है कि:—

रत्नत्रयधरे एका, भक्तिस्तत्कार्यकर्म च ।
शुभैकचिन्ता संसारे जुगुप्सा चेति भावना ॥

यह भाव धर्म, दान, शील, तप आदि द्रव्य धर्म की वृद्धि करता है एवं यह द्रव्य धर्म की वृद्धि फिर भाव धर्म की वृद्धि करती है। इस प्रकार उत्तरोत्तर द्रव्य-भाव धर्म की वृद्धि अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर सर्व कर्म रहित मोक्ष का कारण बनती है।

नवकार मन्त्र के पदों में गुण एवं गुणी की उपासना के उपरान्त शब्द द्वारा शुभ स्पन्दन उत्पन्न करने की जबरदस्त शक्ति है। अतः उसे सर्व मङ्गलों में प्रथम मंगल एवं सर्व कल्याणों में उत्कृष्ट कल्याण कहा गया है।

चार निक्षेपों से होती पाँचों परमेष्ठियों की भक्ति नवकार मन्त्र में निहित होने से सर्व प्रकार के शुभ, शिव एवं भद्र तथा पवित्र, निर्मल एवं प्रशस्त भाव पैदा करने का सामर्थ्य उसमें निहित है।

अनिर्णीत वस्तु का नामादि द्वारा निर्णय, शब्द द्वारा अर्थ का एवं अर्थ द्वारा शब्द का निश्चित बोध, अनभिमत अर्थ का त्याग तथा अभिमत अर्थ का स्वीकार करवाने में जो उपयोगी होता है वह निक्षेप कहलाता है।

नवकार मन्त्र के पद नाम, स्थापना, द्रव्य एवं भाव इन चार निक्षेपों के साथ सम्बन्धित होने से समग्र विश्व की शुभ वस्तुओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करवाते हैं। इनके द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुभ कर्म का क्षय एवं शुभ कर्म का बन्ध करवाकर परम्परानुसार मुक्ति-सुख को प्राप्त करवाता है। अतः यह नवकार मन्त्र सर्व शुभों में उत्कृष्ट शुभ, सर्व मंगलों में उत्कृष्ट मंगल भी कहलाता है।

मोक्ष मार्ग में पुष्टावलम्बन

नवकार मन्त्र जीव को स्वयं की उन्नति सधवाने हेतु पुष्टावलम्बन है। अलक्ष्य को साधने हेतु लक्ष्य का अवलम्बन लेना ही सालम्बन ध्यान है। आलम्बन द्वारा ध्येय में उपयोग की एकता होती है।

उपयोग का अर्थ है बोध रूप व्यापार एवं एकता अर्थात् सजातीय ज्ञान की धारा। निमित्त कारण दो प्रकार के हैं—एक पुष्ट एवं दूसरे अपुष्ट। पुष्ट निमित्त अर्थात् जो कार्य सिद्ध करना हो वह कार्य अथवा साध्य जिसमें विद्यमान हो। मोक्ष मार्ग में सिद्धत्व साध्य है जो श्री अरिहंत सिद्धादि परमेष्ठियों में है। अतः उनका निमित्त पुष्ट निमित्त है, उनका आलम्बन पुष्ट आलम्बन है।

पानी में सुगन्ध रूप कार्य उत्पन्न करना हो तो पुष्प पुष्ट-निमित्त हैं क्योंकि फूलों में सुगन्ध निहित है। पुष्ट निमित्तों का आलम्बन स्मरण, विचिन्तन एवं ध्यान द्वारा हो सकता है। पुष्ट निमित्तों के स्मरण को शास्त्रों में मोक्षमार्ग का प्राण कहा गया है। सर्व सिद्धियों को प्रदान करवाने में स्मरण अचिन्त्य चिन्तामणि के समान गिना जाता है। निमित्तों का स्मृति रूपी चिन्तामणि रत्न प्रशस्त ध्यानादि भावों को प्राप्त करवाकर शुभ फलों को अभिव्यक्त करता है। पुष्ट निमित्तों के स्मरण से इन्द्रियों का बाह्य विषयों से प्रत्याहार होता है। इस प्रकार चित्त से विशेष प्रकार से स्थिरतापूर्वक चिन्तन ही विचिन्तन है। चित्त का विजातीय वृत्ति से अस्पृष्ट सजातीय वृत्ति का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक समान प्रवाह ध्यान है। उसे प्रत्यय की एकतानता भी कहते हैं।

स्मरण, विचिंतन एवं ध्यान साधना का जीवित, प्राण एवं वीर्य है। पुष्ट निमित्तों के आलम्बन से वह प्राप्य है। अतः पुष्ट निमित्त साधना के प्राण गिने जाते हैं। सिद्धसेन सूरिजी कहते हैं कि—

पुष्टहेतुर्जिनेन्द्रोऽयम्, मोक्ष-सद्भाव-साधने।

मोक्ष रूपी कार्य की सिद्धि हेतु श्री जिनेन्द्र भगवान् एवं उपलक्षरण से पाँचो परमेष्ठि-पुष्ट निमित्त हैं। अतः श्री नमस्कार मन्त्र सभी साधनों के लिए पुष्ट आलम्बन रूप बन साध्य की सिद्धि करवाता है।

देह का द्रव्य स्वास्थ्य एवं आत्मा का भाव स्वास्थ्य

पंच मंगल महाश्रुतस्कन्ध रूप होने से सम्यक् ज्ञान स्वरूप है, पंच-परमेष्ठि की स्तुति रूप होने से सम्यक् दर्शन स्वरूप है, तथा सामायिक की क्रिया की अंगरूप एवं मन, वचन, काया की प्रशस्त क्रिया रूप होने से कथंचित् चारित्र स्वरूप भी है।

ज्ञान में मन की, स्तुति में वचन की एवं क्रिया में काया की प्रधानता निहित है।

आयुर्वेदानुसार वात, पित्त एवं कफ की विषमता ही रोग एवं समानता आरोग्य है। जहाँ मन वहाँ प्राण एवं जहाँ प्राण वहाँ मन, इस न्याय के अनुसार सम्यक् ज्ञान वात-वैषम्य को शमित करता है। जहाँ दर्शन, स्तवन, भक्ति आदि हो वहाँ मधुर परिणाम होते हैं एवं वह पित्त प्रकोप को शमित करते हैं। जहाँ काया की सम्यक् क्रिया हो वहाँ गति है, जहाँ गति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहाँ उष्णता होती ही है। उष्णता कफ के प्रकोप को शान्त करती है। इस प्रकार श्री पंचमंगल में शरीर के अस्वास्थ्य उत्पन्न करने वाले त्रिदोष को शान्त करने की शक्ति है।

दूसरी प्रकार से विचारने से यह ज्ञात होता है कि राग ज्ञान गुण का घातक है, द्वेष दर्शन गुण का घातक है एवं मोह चारित्र गुण का घातक है। इससे विपरीत पंचमंगल में ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है तथा मन की, वचन की, काया की प्रशस्त क्रिया है। अतः पंचमंगल में देह को दूषित करने वाले वात, पित्त एवं कफ दोष को शमित करने की शक्ति है, वैसे ही आत्मा को दूषित करने वाले राग, द्वेष एवं मोह को भी शमित करने की शक्ति है।

वात रोग से व्यक्ति वातुल हो जाता है, पर ज्ञान के आने पर वाचाल भी मौन हो जाता है। विकृत ज्ञान राग है, विकृत श्रद्धा दोष है एवं विकृत वर्तन मोह है। रागी दोष को नहीं देखता, द्वेषी गुण को नहीं देखता एवं मोही जानता हुआ भी विपरीत वर्तन करता है। गुण एवं दोष का यथार्थ ज्ञान करने हेतु राग एवं द्वेष को तथा यथार्थ वर्तन करने हेतु मोह को जीतना चाहिए जहाँ आचरण में दोष होगा वहाँ ज्ञान दूषित होगा ही, यह नियम नहीं है। ज्ञान यथार्थ होते हुए भी आचरण के दूषित होने में कारण प्रमादशीलता, दुस्संग एवं अनादि असदभ्यास हैं। इस कारण रागादि दोषों का निग्रह करने हेतु यथार्थ ज्ञान एवं दूसरी तरफ यथार्थ आचरण का अभ्यास आवश्यक है।

ज्ञान मन में, स्तुति-स्तवन वचन में एवं प्रवृत्ति काया द्वारा निष्पन्न होती है। कफ दोष काया की, पित्त-दोष वचन की एवं वात दोष मन की क्रिया के साथ सम्बन्ध रखता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राग, द्वेष एवं मोह ये तीनों दोष भी क्रमशः मन, वचन व काया की क्रिया के साथ सम्बन्ध रखते हैं। राग की अभिव्यक्ति मुख्य रूप से मन में, द्वेष की वचन में एवं मोह की क्रिया द्वारा होती है। पंचमंगल ज्ञान, दर्शन, चारित्र स्वरूप होने से तथा उसमें मन, वचन तथा काया तीनों की प्रशस्त क्रिया होने से उसमें आत्मा को दूषित करने वाले राग, द्वेष व मोह तथा शरीर को दूषित करने वाले वात, पित्त तथा कफ का निग्रह करने को शक्ति निहित है। अतः श्री पंचमंगल का आराधन आत्मा का भाव-स्वास्थ्य व देह का द्रव्य-स्वास्थ्य दोनों को प्रदान करने की शक्ति एक ही साथ रखता है।

प्रथम पद का अर्थभावनापूर्वक जाप

समग्र नवकार की भाँति नवकार के प्रथम पद के जाप से मन-वचन-काया के योग तथा आत्मा के ज्ञान-दर्शन-चारित्र गुणों की शुद्धि होती है।

देह की तीनों धातु वात, पित्त एवं कफ तथा आत्मा के तीन दोष राग-द्वेष व मोह क्रमशः तीनों योग की तथा गुण की शुद्धि द्वारा दूर होते हैं।

'नमो' पद द्वारा मनोयोग तथा ज्ञान गुण को, 'अरिहं' पद द्वारा वचनयोग व दर्शन गुण की तथा 'ताणं' पद द्वारा काययोग तथा चारित्र गुण की शुद्धि होती है। त्रियोग की शुद्धि द्वारा वात, पित्त व कफ के विकार तथा त्रिगुण की शुद्धि द्वारा राग, द्वेष एवं मोह के दोष नष्ट होते हैं। अतः श्री नवकार मन्त्र के प्रथम पद के जाप द्वारा शरीर तथा आत्मा दोनों की भी शुद्धि होती है। शुभ मनोयोग से वातविकार जाता है, शुभ वचनयोग से पित्तविकार जाता है व शुभ काययोग से कफविकार जाता है। सम्यक् ज्ञान द्वारा राग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोष जाते हैं, सम्यक् दर्शन द्वारा द्वेष दोष जाता है व सम्यक् चरित्र द्वारा मोह दोष जाता है। मन की शुद्धि मुख्य रूप से 'नमो' पद व उसके अर्थ की भावना द्वारा होती है। वचन की शुद्धि 'अरिहं' पद एवं उसके अर्थ की भावना द्वारा होती है। काया की शुद्धि 'ताणं' पद तथा उसके अर्थ की भावना द्वारा होती है।

'नमो' पद मंगलसूचक है। 'अरिहं' पद उत्तमता का सूचक है एवं 'ताणं' पद शरणागति को सूचित करता है। मंगल, उत्तम एवं शरण को बताने वाले प्रथम पद की भावना क्रमशः ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की शुद्धि करती है।

सच्चा ज्ञान दुष्कृतवान स्वात्मा की गर्हा करवाता है, सच्चा दर्शन सुकृतवान अरिहंतादि की स्तुति करवाता है तथा सच्चा चारित्र आज्ञा पालन के भाव का विकास करता है। दुष्कृत के प्रति राग, सुकृत के प्रति द्वेष तथा आज्ञा पालन के प्रति प्रमाद सम्यक् ज्ञान, दर्शन व चारित्र गुण के विकास से नष्ट होते हैं तथा इन तीनों गुणों का विकास प्रथम पद के अर्थभावनापूर्वक होते जाप द्वारा सुसाध्य बनता है।

नवकार चौदह पूर्व-अष्ट-प्रवचन माता

महामन्त्र का मुख्य विषय योगशास्त्र में वर्णित लक्षणों वाली मनोगुप्ति है। वहाँ कहा गया है कि:--

विमुक्तकल्पनाजालं, समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।
आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता ॥

आर्त रौद्र ध्यान का त्याग, धर्म ध्यान में स्थिरता एवं आत्माराम वाला शुक्लध्यान जिसमें हो उसे ज्ञानी पुरुषों ने मनोगुप्ति कहा है। नवकार मन्त्र के जाप से तीनों कार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अल्पाधिक अंश में सिद्ध होते दिखाई देते हैं। अतः मनोगुप्ति की भाँति नवकार को भी चौदह पूर्व का सार कहा है।

चौदह पूर्व का सार जिस प्रकार नवकार है, वैसे ही अष्ट प्रवचन माता भी है। अष्टप्रवचन माता में भी मनोगुप्ति प्रधान है। शेष गुप्तियाँ तथा समितियाँ मनोगुप्ति को सिद्ध करने के लिए ही कही गई हैं। दूसरी प्रकार से चौदह पूर्व का अभ्यास कर के भी अन्त में अष्टप्रवचन माता के परिपूर्ण पालन स्वरूप पंचपरमेष्ठि पद को ही प्राप्त करना है।

महामन्त्र का जाप व चिन्तन पाँच परमेष्ठियों पर प्रीति व भक्ति जाग्रत करता है तथा इस स्वरूप को प्राप्त करने की तत्परता (तमन्ना) उत्पन्न करता हैं व अन्त में उस स्वरूप को प्राप्त करवाकर विरमित होता है। अतः नवकार, चौदह पूर्व एवं अष्टप्रवचन माता एक ही कार्य को सिद्ध करने वाला मन्त्र होने से समानार्थक एक प्रयोजनात्मक एवं परस्पर पूरक बन जाता है।

तत्त्वरुचि-तत्त्वबोध-तत्त्वपरिणति

नवकार के प्रथम पद की अर्थभावना अनेक प्रकार से विचारी जा सकती है। नमोपद से तत्त्वरुचि, अरिहं पद से तत्त्वबोध तथा ताणं पद से तत्त्वपरिणति ली जा सकती है। नमोपद आत्मतत्त्व की रुचि जाग्रत करता है, अरिहं पद शुद्ध आत्मतत्त्व को बोध कराता है एवं ताणं पद आत्मतत्त्व की परिणति उत्पन्न करता है।

श्री विमलनाथ प्रभु के स्तवन में पू० उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि—

तत्त्व प्रीतिकर पाणी पाए विमला लोके आंजीजी,
लोयण गुरु परमान्न दिए तव भ्रमनां खेस विभांजी जी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमात्मा का ध्यानतत्त्व प्रीतिकर जल है तत्त्वबोधकर निर्मल नेत्राञ्जन है एवं सर्वरोगहर परमान्न भोजन है। नवकार के प्रथम पद में होता अरिहंत परमात्मा का ध्यान इन तीनों कार्यों को करता है 'नमो' पद से मिथ्यात्व का त्याग। 'अरिहं' पद से अज्ञान का त्याग एवं 'ताणं' पद से अविरति का त्याग होता है। नमनीय को न नमना ही मिथ्यात्व है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप को न जानना ही अज्ञान है तथा आचरण करने योग्य का आचरण न करना ही अविरति है। नवकार के प्रथम पद के आराधन से नमनीय को नमन, ज्ञातव्य का ज्ञान व करणीय का सम्पादन होने से तीनों दोषों का निवारण हो जाता है।

बहिरात्मभाव-अन्तरात्मभाव-परमात्मभाव

नवकार के प्रथम पद से बहिरात्मभाव का त्याग, अन्तरात्मभाव का स्वीकार तथा परमात्मभाव का आदर होता है। श्री आनन्दघनजी महाराज सुमतिनाथ भगवान के स्तवन में कहते हैं कि:—

बहिरात्म तजी अन्तर आतमारूप
थई थिर भाव सुज्ञानी,
परमातमनु हो आतम भाव वुं,
आतम अरपण दाव, सुज्ञानी,
सुमतिचरणकंजः आतम अरपणा–

सुमतिनाथ भगवान के चरणकमल में आत्मा का अर्पण करने का दाव यह है कि बहिरात्म भाव का त्याग कर, अन्तरात्म भाव में स्थिर हो, स्वात्मा ही तत्त्व से परमात्म है इस भाव में रमण करना। नमोपद द्वारा बहिरात्म भाव का त्याग व अन्तरात्म भाव का स्वीकार होता है तथा अरिहं एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताएं पद द्वारा आत्मा का परमात्म स्वरूप में भावन व उसके परिणामस्वरूप रक्षण होता है। तीनों भावों का पृथक्-पृथक् वर्णन करते हुए आप श्री कहते हैं:—

आतम बुद्धि हो कायादिक ग्रह्यो,
बहिरातम अघरूप सुज्ञानी,
कायादिकनो हो साखीधर रह्यो,
अन्तर आतम रूप सुज्ञानी, सुमति चरण ।।
ज्ञानानन्दे हो पूरण पावनो,
वरजित सकल उपाधि, सुज्ञानी,
अतीन्द्रिय गुणगण मणि आगरू,
इम परमातम साध, सुज्ञानी, सुमति चरण ।।

काया, वचन, मन आदि को एकान्त आत्मबुद्धि से ग्रहण करने वाला बहिरात्म भाव है व पाप रूप है। वही कायादि का साक्षी भाव अन्तरात्म स्वरूप कहा जाता है व जो परमात्म स्वरूप ज्ञानानन्द से पूर्ण है, सर्व बाह्य उपाधि से रहित है, अतीन्द्रिय गुण समूह रूप मणियों की खान है, उसकी साधना करनी चाहिए।

नवकार के प्रथम पद की साधना बहिरात्म भाव को छुड़ाकर अन्तरात्म भाव में स्थिर कर परमात्म भाव की भावना करवाती है। अतः पुनः पुनः करने योग्य है। कहा है कि:—

बाह्यात्मनमपास्य, प्रसत्ति भाजाऽन्तरात्मनायोगी ।
सततं परमात्मानं, विचिन्तयेत्तन्मयत्वाय ।।

योग शास्त्र प्र० १२ श्लो० ६

बाह्यात्म भाव का त्याग कर, प्रसन्न अन्तरात्म भाव द्वारा परात्मतत्त्व का विशिष्ट चिन्तन तन्मय होने के लिए योगी निरन्तर करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम पद का जाप व उसके अर्थ का चिन्तन साधक को योगियों की उपर्युक्त भावना का अभ्यास करवाने वाला होता है।

गति चतुष्टय से मुक्ति एवं अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति

नवकार का प्रथम पद 'नमो' सद् विचार का प्रेरक है, 'अरिहं' पद सद् विवेक का प्रेरक है एवं 'ताणं' पद सद्वर्तन का प्रेरक है। सद्विचार, सद्विवेक एवं सद्वर्तन ही निश्चयात्मक रूप से रत्नत्रयी है।

व्यक्तिनिष्ठ अहं मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्या चारित्र से युक्त है। यही अहं जब समष्टिनिष्ठ बनता है तब सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र युक्त बनता है।

व्यवहार से संसारी जीव मात्र कर्मबद्ध है व इसी कारण जन्म-मरण चक्र करता रहता है। निश्चयनय से ऐसी श्रद्धा ज्ञान व तदनुरूप वर्तन होता है कि जीव मात्र अनन्त चतुष्टयवान है, अष्ट कर्म से भिन्न है, तब अहं स्वयं ही अर्हं रूप बन जन्ममरण रूप चार गति का अन्त करता है।

नवकार के प्रथम पद का आराधन, चिन्तन व मनन जीव को मिथ्या रत्नत्रयी से मुक्त कर सम्यक् रत्नत्रयी से युक्त करता है फलस्वरूप अनन्त चतुष्टय से युक्त कर, गति चतुष्टय से मुक्त करता हैं।

शून्यता-पूर्णता एवं एकता का बोधक

नवकार का प्रथम पद पररूपेण नास्तित्वरूप शून्यता का बोधक है, स्वरूपेण अस्तित्वरूप पूर्णता का बोधक है एवं उन्नय रूप से युगपत् अवाच्यत्व रूप स्वसंवेद्यत्व का बोधक है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः वह शून्यता, पूर्णता व एकता की भावना उत्पन्न कर जीव को भक्ति, वैराग्य व ज्ञान से परिपूर्ण बनाता है।

पूर्णता का बोध भक्तिप्रेरक है, शून्यता का बोध वैराग्य-प्रेरक है एवं एकता का बोध तत्त्वज्ञान का प्रेरक है। चतुर्थ गुण स्थानक में भक्ति की प्रधानता, छट्ठे गुण स्थानक में वैराग्य की प्रधानता एवं उससे ऊपर के गुण स्थानकों में तत्त्वज्ञान की मुख्यता मानी गई है। प्रथम पद इस प्रकार सर्व गुण स्थानकों के लिए योग्य साधना की सामग्री पूरी करता है अतः उसे सिद्धान्त का सार रूप कहा जाता है।

इच्छायोग-शास्त्रयोग-सामर्थ्ययोग

नवकार के प्रथम पद में इच्छायोग, शास्त्रयोग व सामर्थ्ययोग इन तीनों प्रकार के योगों का समावेश है। नमो पद इच्छायोग का प्रतीक है, अरिहं पद शास्त्रयोग का प्रतीक है व ताणं पद सामर्थ्ययोग का प्रतीक है। इच्छायोग प्रमादी ज्ञानी की विकल-अपूर्ण क्रिया है, शास्त्रयोग अप्रमादी ज्ञानी की अविकल क्रिया है व सामर्थ्ययोग इनसे भी विशेष अप्रमत्त-भाव को धारण करने वालों की शास्त्रातिक्रान्त प्रवृत्ति है।

'नमो' पद शास्त्रोक्त क्रिया की इच्छा दर्शित करता है अतः प्रार्थना स्वरूप है, 'अरिहं' पद शास्त्रोक्त क्रिया का स्वरूप बताता है अतः स्तुति स्वरूप है व 'ताणं' पद शास्त्रोक्त मार्ग पर चलकर उसका पूर्णफल बताता है अतः उपासना स्वरूप है। इस प्रकार नवकार के प्रथम पद में सदनुष्ठान का प्रार्थना रूप इच्छायोग, सदनुष्ठान की स्तुतिरूप शास्त्रयोग व सदनुष्ठान की उपासना रूप सामर्थ्ययोग गुम्फित (ग्रथित) होने से तीनों प्रकार के योगियों को उत्तम आलम्बन प्रदान करने में समर्थ हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छायोग से योगावंचकता की प्राप्ति, शास्त्रयोग से क्रियावंचकता की प्राप्ति एवं सामर्थ्ययोग से फलावंचकता की प्राप्ति होती है। तीनों प्रकार के अवंचकयोग प्रथम पद के आराधक को क्रमशः प्राप्त होते हैं।

यही कारण में कार्य का उपचार कर प्रथम पद की आराधना के इच्छायोग, शास्त्रयोग एवं सामर्थ्ययोग के नाम घटित होते हैं। फलस्वरूप सद्गुरु की प्राप्ति रूपी योगावंचकता, उनकी आज्ञा का पालन रूपी क्रियावंचकता एवं उसके फल-स्वरूप परम पद की प्राप्ति रूपी फलावंचकता भी घटित होती है।

हेतु स्वरूप एवं अनुबन्ध से शुद्ध लक्षण वाला धर्मानुष्ठान

सद्नुष्ठान का सेवन ही धर्म का हेतु है, परिणाम की विशुद्धि ही धर्म का स्वरूप है व जब तक इहलोक परलोक के सुखदायक फल तथा मुक्ति प्राप्त नहीं होते तब तक पुनः पुनः सद्धर्म की प्राप्ति रूप अनुबन्ध ही धर्म का फल है। नमस्कार मन्त्र व उसके प्रथम पद के आराधक को इन तीनों वस्तुओं की प्राप्ति होती है। अतः वह हेतु स्वरूप तथा अनुबन्ध से शुद्ध लक्षण वाला धर्मानुष्ठान बनता है।

शास्त्रों में धर्म का स्वरूप नीचे माफिक कहा गया है—

वचनाद्यदनुष्ठानमविरुद्धाद्यथोदितम्।
मैत्र्यादिभावसंयुक्तं, तद्धर्म इति कीर्त्यते।

पूर्वापर अविरुद्ध वचन का अनुसरण कर, मैत्र्यादि भावयुक्त यथोक्त अनुष्ठान को धर्म कहा गया है। नवकार की आराधना अविरुद्ध वचनानुसारी है, सभी प्रकार के गुण स्थानकों में स्थित जीवों को उनकी योग्यतानुसार विकास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करवाने वाली है तथा मैत्री प्रमोदादि भावों से युक्त है जिससे यथोक्त धर्मानुष्ठान सम्पादित होता है। इसका फल इस लोक में अर्थ, काम, आरोग्य, अभिरति व परलोक में मुक्ति व उस मुक्ति की प्राप्ति न होने तक सद्गति, उत्तम कुल में जन्म व सद्बोध की प्राप्ति आदि अवश्य करआता है।

दूसरी प्रकार से यह कहा जा सकता है कि नमो धर्म का बीज है क्योंकि उसमें सद्धर्म व उसको धारण करने वाले सत्पुरुषों की प्रशंसादि निहित है, धर्म-चिन्तन आदि उसमें अंकुरित है व परम्परा से निर्वाण रूप परमफल स्थित है अतः उसका आराधन अत्यन्त आदरणीय है। इस हेतु कहा गया है कि:—

'वपनं धर्मबीजस्य, सत्प्रशंसादि तद्गतम्।
तच्चिन्ताद्यंकुरादि स्यात्, फलसिद्धिस्तु निर्वृतिः।'

'नमो अरिहंताणं' पद के आराधन में धर्मबीज का वपन, धर्मचिन्तन आदि अंकुर व फलसिद्धिरूपी निर्वाण पर्यन्त के सुख स्थित हैं।

आगम-अनुमान-ध्यानाभ्यास

नमो पद से धर्म का श्रवण, अरिहं पद से धर्म का चिन्तन तथा ताणं पद से धर्म की भावना उत्पन्न होती है। श्रुत, चिन्तन तथा भावना को क्रमशः उदक (जल) पय (दूध) व अमृत तुल्य कहा गया है। उदक में प्यास बुझाने की जो शक्ति है उससे अधिक पय में अर्थात् दूध में है तथा उससे भी अधिक अमृत में है। धर्म का श्रवण विषयों की जिस तृषा को शान्त करता है उससे अधिक तृषा को धर्म का चिन्तन शान्त करता है तथा उससे भी अधिक धर्म की भावना, ध्यान, निदिध्यासनादि शान्त करते हैं। विषयों की तृषा तथा कषायों की क्षुधा की तृप्त करने को शक्ति प्रथम पद की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थभावना में स्थित है क्योंकि उसके तीनों पदों द्वारा धर्म के श्रवण-मनन निदिध्यासन आदि तीनों कार्य सिद्ध होते हैं। धर्म की तथा योग की सिद्धि हेतु जो तीनों उपाय शास्त्रकारों ने बताये हैं उन तीनों की आराधना प्रथम पद की आराधना से सिद्ध होती है। इस हेतु योगाचार्यों ने कहा है कि –

आगमेनानुमानेन, ध्यानाभ्यासरसेन च।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां, लभते योगमुत्तमम्।

आगम, अनुमान तथा ध्यानाभ्यास का रस इन तीनों उपायों से प्रज्ञा को जब समर्थ बनाया जाता है तब उत्तमयोग की अथवा उत्तम प्रकार से योग की अर्थात् मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। योग द्वारा जो योग साधना करनी होती है उन तथा मोक्ष दोनों की प्रथम श्रद्धा आगम के श्रवण द्वारा उत्पन्न होती है। फिर अनुमान, युक्ति आदि के विचार द्वारा प्रतीति होती है तथा अन्त में ध्यान निदिध्यासन द्वारा स्पर्शना अर्थात् प्राप्ति होती है।

आगम, अनुमान, ध्यान अथवा श्रुत, चिन्ता तथा भावना क्रमशः श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के ही पर्यायवाचक शब्द हैं तथा उन तीनों अंगों की आराधना प्रथम पद की अर्थ भावना युक्त आराधना द्वारा होती है।

धर्मकाय, कर्मकाय तथा तत्त्वकाय अवस्था

तीर्थंकरों की धर्मकाय, कर्मकाय तथा तत्त्वकाय ये तीन अवस्थाएं होती हैं। शास्त्र की परिभाषा में उन्हें क्रमशः पिण्डस्थ, पदस्थ तथा रूपातीत नाम से सम्बोधित किया जाता है। धर्मकाय अथवा पिंडस्थ अवस्था प्रभु की सयक्त्व प्राप्ति के पश्चात् होती धर्म साधना को कहा जाता है। अन्तिम भव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के अन्दर भी जब तक घाती कर्म का क्षय होता नहीं, तब तक उसकी जन्मावस्था, राज्यावस्था तथा चारित्र ग्रहण करने के बाद केवल ज्ञान न हो तब तक छद्मस्थावस्था की आराधना को धर्मकाय की अवस्था कहा गया है। उसके बाद घाती कर्म का क्षय, कैवल्य की प्राप्ति होने के पश्चात् धर्मतीर्थ की स्थापना तथा निरन्तर धर्मोपदेशादि के द्वारा परोपकार की प्रवृत्ति कर्मकाय अवस्था है। योगनिरोधरूप शैलेशीकरण को तत्त्वकाय अवस्था कहा गया है।

इन तीनों अवस्थाओं का ध्यान तथा आराधना नवकार के प्रथम पद की आराधना से होता है। उसमें नमो पद धर्मकाय अवस्था का प्रतीक बनता है, अरिहं पद कर्मकाय अवस्था का प्रतीक बनता है तथा ताणं पद तत्त्वकाय अवस्था का प्रतीक बनता है।

इस प्रकार प्रभु की पिंडस्थ, पदस्थ तथा रूपातीत अवस्थाओं की आराधना का साधन नवकार के प्रथम पद द्वारा होने से प्रथम पद का जाप ध्यान तथा अर्थ-चिन्तन पुनः पुनः करने योग्य है।

अमृत अनुष्ठान

प्रथम पद द्वारा परमात्मा की स्तुति, परमात्मा का स्मरण तथा परमात्मा का ध्यान सरलता से हो सकता है। नाम ग्रहण द्वारा स्तुति, अर्थभावना द्वारा स्मरण तथा एकाग्रचिन्तन द्वारा ध्यान संभव हो सकता है।

श्रद्धा, मेधा, धृति, धारणा तथा अनुप्रेक्षा द्वारा होती प्रभु की स्मृति तथा ध्यान क्रमशः बोधि, समाधि तथा सिद्धि का कारण बनते हैं।

'नमो अरिहंताणं' पद योग की इच्छा, योग की प्रवृत्ति, योग का स्थैर्य व योग की सिद्धि करवाता है, इतना ही नहीं पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रीति, भक्ति, वचन व असंग ये चारों प्रकार के अनुष्ठान की प्राप्ति करवाकर निर्विघ्न रूप से जीवों को मोक्ष में ले जाता है।

योग के पांचों अंग जैसे स्थान, वर्ण, अर्थ, आलंबन तथा अनालंबन तथा आगमोक्त योग की आठों अवस्थाएं जैसे तच्चित्, तन्मय, तल्लेश्य, तदध्यवसाय, तत्तीव्र अध्यवसाय तदर्थोपयुक्त, तदर्पितकरण तथा तद्भावनाभावित पर्यन्त को अवस्था प्रथम पद के आलंबन द्वारा सिद्ध की जा सकती है।

द्रव्य-क्रिया को भाव-क्रिया बनाने वाली तथा तद् हेतु अनुष्ठान को अमृत अनुष्ठान बनाने वाली जिन चित्तवृत्तियों को शास्त्रकारों ने कहा है, उन सबका आराधन प्रथम पद के आलम्बन द्वारा हो सकता है।

अर्थ का आलोचन, गुण का राग तथा भाव की वृद्धि ये तीन गुण द्रव्यक्रिया को भावक्रिया बनाते हैं तथा तद्गत चित्त, शास्त्रोक्त विधान, भाव की वृद्धि, भव का भय, विस्मय-पुलक एवं प्रधान प्रमोद उस तद्-हेतु अनुष्ठान को अमृत अनुष्ठान बनाते हैं। इस हेतु कहा गया है कि:--

तद्गत चित्त ने समय विधान,
भावनी वृद्धि भय, भय अति घणोजी;
विस्मय पुलक प्रमोद प्रधान,
लक्षण ए छे अमृत क्रिया तणोजी।

भाव प्राणायाम का कार्य

नमो पद बाह्यभाव का रेचन करवाता है, आन्तरभाव का पूरक बनता है तथा परमात्मभाव का कुंभक करवाता है जिससे वह भाव-प्राणायाम का कार्य भी करता है। भावप्राणायाम ज्ञानावरण का क्षय तथा योग के ऊपर के ध्यानादि अङ्गों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धि करवानें वाली होने से मात्र शरीर स्वास्थ्य को सुधारनें वाले द्रव्य प्राणायाम की अपेक्षा उत्कृष्ट है। उसका आराधन प्रथम पद के आलम्बन से सुन्दर प्रकार से होने से प्रथम पद अत्यन्त उपादेय है।

आगमों में नमस्कार पद का अर्थ निम्न प्रकार से कहा गया है:—

मणसा गुण परिणामो, वाया गुण भासणं च पंचरहं ।
कायेण सपणामो, एस पयत्थो नमुक्कारो ।।

मन से पंचपरमेष्ठि के गुणों का परिणमन, वाणी से नंचपरमेष्ठि के गुणों का भाषण तथा काया से पंचपरमेष्ठि भगवान् को सम्यक् प्रणाम करना ही नमस्कार पद का अर्थ है।

नमो पद द्वारा मन में गुणों का परिणाम होता है, अरिह पद द्वारा गुणों का भाषण होता है तथा ताणं पद द्वारा काया का प्रणमन होता है। अथवा तीनों पद मिलकर परमेष्ठि भगवान् के गुणों का परिणमन, भाषण तथा प्रणमन करवाते हैं तथा उससे मन, वचन, काया के तीनों योगों का सार्थक्य होता है।

भव्यत्व परिपाक के उपाय एवं आभ्यन्तर तप

नवकार के प्रथम पद के जाप तथा ध्यान द्वारा भव्यत्व परिपाक के तीनों उपाय क्रमशः दुष्कृत गर्हा, सुकृतानुमोदन तथा शरण गमन एक ही साथ साधित होते हैं। अभ्यन्तर तप के भी छओं प्रकार क्रमशः प्रायश्चित, विनय, वैयावच्च, स्वाध्याय, ध्यान तथा कार्योत्सर्ग का भी एक ही साथ सेवन होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमो पद दुष्कृत की गर्हा करवाता है, अरिहं पद सुकृत की अनुमोदना करवाता है तथा ताणं पद शरण गमन की क्रिया करवाता है। इसी प्रकार नमो पद द्वारा पाप का प्रायश्चित तथा गुणों का विनय होता है, अरिहं पद द्वारा भाव वैयावच्च एवं स्वाध्याय होता है तथा ताणं पद द्वारा परमात्मा का ध्यान एवं देहभाव का विसर्जन होता है।

दुष्कृत गर्हादि द्वारा जीव की मुक्तिगमन-योग्यता परिपक्व होती है तथा प्रायश्चित-विनयादि तप द्वारा क्लिष्ट कर्मों का विगम तथा भाव-निर्जरा होती है।

समापत्ति, आपत्ति एवं सम्पत्ति

नवकार के प्रथम पद में ध्याता ध्येय तथा ध्यान तीनों की एकता रूप समापत्ति साधित होती है। अतः तीर्थंकर नाम कर्म के उपार्जन रूप आपत्ति तथा उसके विपाकोदय रूप सम्पत्ति की भी प्राप्ति होती है। 'नमो' पद ध्याता की, अरिहं पद ध्येय की तथा ताणं पद ध्यान की शुद्धि सूचित करता है। इन तीनों की शुद्धि द्वारा तीनों की एकता रूप समापत्ति तथा उसके परिणामस्वरूप आपत्ति अर्थात् तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन तथा बाह्यान्तर सम्पत्ति प्राप्त होती है।

ज्ञानसार ग्रन्थ के ध्यानाष्टक में कहा गया है कि:—

ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं, त्रयं यस्यैकतां गतम्।
मुनेरनन्यचित्तस्य, तस्य, दुःखं न विद्यते ॥१॥
ध्याताऽन्तरात्मा ध्येयस्तु, परमात्मा प्रकीर्तितः।
ध्यानं चैकाग्र संवित्तिः समापत्तिस्तदेकता ॥२॥
आपत्तिश्च ततः पुण्य-तीर्थकृत् कर्म बन्धतः।
तद्भावाभिमुखत्वेन, सम्पत्तिश्च क्रमाद्भवेत् ॥३॥
इत्थं ध्यानं फलाद्युक्तं, विंशतिस्थानकाद्यपि।
कष्टमात्रं त्वभव्यानामपि नो दुर्लभं भवे ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यान का फल समापत्ति, आपत्ति (तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन) तथा सम्पत्ति (तीर्थंकर नाम कर्म का विपाकोदय) रूप होने से विंशति स्थानक तप आदि का आराधन सफल माना गया है। जिससे वह फल प्राप्त नहीं होता। ~~न ही~~ उसके लिए वह आराधन कष्टमात्र फल वाला है तथा वह तो इस भवचक्र में अभव्यों को भी दुर्लभ नहीं।

नवकार के प्रथम पद का भाव से होता आराधन इस प्रकार समापत्ति आदि भेद द्वारा सफल होने से अत्यन्त उपादेय है।

धर्म ध्यान एवं शुक्ल ध्यान

शास्त्रों में आज्ञाविचय, उपायविचय, विपाकविचय तथा संस्थानविचय आदि चार प्रकार का ध्यान कहा गया है। वह धर्म-ध्यान नवकार के प्रथम पद नमो पद की अर्थभावना द्वारा साधा जा सकता है।

नमस्कार में प्रभु की आज्ञा का विचार है, रागादि दोषों की अनिष्टकारिता तथा ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों के विपाक की निरसता का भी विचार है। चौदह राज-लोक रूप विस्तार वाले आकाश प्रदेशों में धर्मस्थान की प्राप्ति की आत्यन्तिक दुर्लभता है यह विचार रूपी संस्थानविचय ध्यान भी उसी में निहित है।

'अरिहं' पद में शुक्ल ध्यान के प्रथम दो भेद पृथक्त्व वितर्क-सविचार तथा एकत्व वितर्क-अविचार तथा 'ताणं' पद शुक्ल ध्यान के अन्तिम दो भेद सूक्ष्म क्रिया-अप्रतिपाति तथा व्युपरत-क्रिया-अनिवृत्ति का विचार निहित है। इस प्रकार अर्थ-भावनापूर्वक प्रथमपद का जाप धर्मध्यान के चारों स्तम्भ तथा शुक्लध्यान के स्तम्भों का एक साथ संग्राहक होने से अति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उज्ज्वल लेश्या का उत्पादक होता है। अतः आत्मार्थी जीवों के लिए अत्यन्त उपादेय है तथा पुनः पुन करने योग्य है।

तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान

योगशतक में कहा गया है कि--

सरणं भए उवायो
रोगे किरिया विसम्मि मंतो य ।
एए वि पापकम्मो—
वक्कमभेया उवत्तोणं ॥ १॥

सरणं गुरु य इत्थं,
किरिया उतवोत्ति कम्मरोगम्मि।
मंतो पुण सज्झाओ,
मोह विसविणासणो पवरो ॥ २॥

जब अन्य से भय उत्पन्न होता है तब समर्थ की शरण में जाना ही उसका उपाय है। कुष्ठादि व्याधि का उपाय जैसे योग्य चिकित्सा है, तथा स्थावर-जंगम रूप विष के उपद्रव का निवारण जैसे देवाधिष्ठित अक्षरन्यास रूप मन्त्र है वैसे ही भयमोहनीय आदि पापकर्मों का उपक्रम अर्थात् विनाश करने के उपाय शरणागति आदि को ही कहा गया है।

शरण्य गुरुवर्ग है, कर्मरोग की चिकित्सा बाह्य आभ्यन्तर तप है, तथा मोह विष का विनाश करने में समर्थ मन्त्र पाँच प्रकार का स्वाध्याय है। पातंजल योग सूत्र में भी कहा गया है कि:—

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।
समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥

(२।१-२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान क्रियायोग है। उससे क्लेश की अल्पता एवं समाधि की प्राप्ति होती है। नवकार का प्रथम पद 'नमो अरिहंताणं' समाधि की भावना एवं अविद्यादि क्लेशों का निवारण करता है। नमो पद से कर्मयोग की चिकित्सा रूप वाह्य आभ्यन्तर तप, अरिहं पद द्वारा स्वाध्याय एवं ताणं पद द्वारा ईश्वरप्रणिधान—एकाग्रचित से परमात्म-स्मरण होता है। प्रथम पद के विधिपूर्वक जाप से श्रद्धा वढ़ती हैं, वीर्य प्रज्ञा बड़ती है तथा अन्त में कैवल्य की प्राप्ति होती है।

अष्टांग-योग

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि ये योग के आठ अङ्ग कहे गए हैं। उस प्रत्येक अङ्ग की साधना विधियुक्त नवकार मन्त्र को गिनने वाले को सिद्ध होती है। नवकार मन्त्र को गिनने वाला अहिंसक बनता है, सत्यवादी होता है, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह व्रत का भी आराधक होता है। नवकार मन्त्र के आराधक की बाह्यान्तर शौच एवं सन्तोष तथा पूर्वकथनानुसार तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर-प्रणिधान रूप नियमों की साधना होती है। नवकार मन्त्र को गिननेवाला स्थिर एवं सुखासन की तथा बाह्याभ्यन्तर प्राणायाम की साधना करने वाला भी होता है।

नवकार का साधक इन्द्रियों का प्रत्याहार, मन की धारणा एवं बुद्धि की एकाग्रतारूप ध्यान तथा अन्तःकरण की समाधि का अनुभव करता है। नमो पद से नाद की, अरिहं पद से बिन्दु की एवं ताणं पद से कला की साधना होती है। नवकार मन्त्र से नास्तिकता, निराशा एवं निरुत्साहिता नष्ट होती है तथा नम्रता, निर्भयता एवं निश्चिन्तता प्राप्त होती है। नवकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्त्र में स्वयं की कर्मबद्ध अवस्था का स्वीकार होता है, अरिहंतों की कर्मयुक्त अवस्था का ध्यान होता है एवं कर्ममुक्ति के उपाय-स्वरूप ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र का आराधन होता है।

क्षायिकभाव की प्राप्ति

नवकार मन्त्र से औदयिक भावों का त्याग, क्षायोपशमिक-भावों का आदर एवं परिणाम-स्वरूप क्षायिकभावों की प्राप्ति होती है। नवकार मन्त्र के आराधक को मधुर परिणाम की प्राप्ति रूप सामभाव, तुला परिणाम की आराधना रूप सम-भाव एवं क्षीरखण्ड युक्त अत्यन्त मधुर परिणाम की आराधना रूप समभाव की परिणति का लाभ होता है। नवकार की आराधना से चिन्तामणि, कल्पवृक्ष एवं कामकुम्भ से भी अधिक श्रद्धेय, ध्येय एवं शरण्य की प्राप्ति होती है।

नमो पद से क्रोध का दाह शमित होता है, अरिहं पद से विषय-तृषा नष्ट होती है एवं ताणं पद से कर्म का पंक शोषित होता है। दाह शमन से शान्ति होती है, तृषा मिटने से तुष्टि होती है एवं पंक शोषण से पुष्टि होती है। अतः इस मन्त्र के लिए तीर्थ-जल की एवं परमान्न की उपमाएँ सार्थक होती हैं। परमान्न का भोजन जैसे क्षुधा निवारण कर चित्त को तुष्ट एवं देह को पुष्ट करता है वैसे ही इस मन्त्र का आराधन भी विषय-क्षुधा का निवारक होने से मन को शान्त कर चित्त को तुष्ट एवं आत्मा को पुष्ट करता है। 'नमो' उपशम है, 'अरिहं' विवेक है एवं ताणं संवर है।

नवकार मन्त्र में कृतज्ञता एवं परोपकार, व्यवहार एवं निश्चय, अध्यात्म एवं योग, ध्यान एवं समाधि, दान एवं पूजन, शुभ विकल्प एवं निर्विकल्प, योगारम्भ एवं योगसिद्धि, सत्त्व-शुद्धि एवं सत्त्वातीतता, पुरुषार्थ एवं सिद्धि, सेवक तथा सेव्य,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृपापात्र एवं करुणावान आदि साधना की समग्र सामग्री निहित है। इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया का सुन्दर सुमेल होने से आत्मशक्ति के विकास हेतु उसमें परिपूर्ण सामर्थ्य है। अतः शास्त्रों में कहा गया है कि—

एसो अणाई कालो,
अणाई जीवो य अणाई जिण धम्मो ।
तइवावि ते पढंता,
ऐसुच्चिय जिण नमुक्कारो ॥

काल अनादि है, जीव अनादि हैं एवं जिन धर्म भी अनादि है। अतः यह नमस्कार अनादिकाल से किया जा रहा है एवं अनन्तकाल तक किया जायगा एवं इसे करने वाले एवं करवाने वाले का अनन्त कल्याण सम्पादित करेगा।

भव्यत्व परिपाक के उपाय

कर्म से सम्पृक्त होने की जीव की स्वयं की योग्यता को सहज-मल कहा जाता है एवं मुक्ति से सम्पृक्त होने की जीव की योग्यता को भव्यत्व स्वभाव कहा जाता है। प्रत्येक जीव की योग्यता भिन्न-भिन्न होती है उसे तथा-भव्यत्व कहते हैं। सहजमल का ह्रास एवं तथाभव्यत्व का विकास तीन साधनों से होता है जिसमें प्रथम दुष्कृत गर्हा, द्वितीय सुकृतानुमोदन तथा तृतीय अरिहंतादि चार वस्तुओं की शरण जाना है।

मुख्य रूप से दुष्कृत गर्हा का प्रतिबन्धक राग दोष है, सुकृतानुमोदन का प्रतिबन्धक द्वेष दोष है एवं शरण गमन का प्रतिबन्धक मोह दोष है। राग दोष ज्ञानगुण से जीता जाता है, द्वेष दोष दर्शनगुण से जीता जाता है एवं मोह दोष चारित्र गुण से जीता जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान गुण की पराकाष्ठा 'नमो' भाव में है, दर्शन गुण की पराकाष्ठा 'अर्हं' भाव में है एवं चारित्र गुण की पराकाष्ठा 'शरण' भाव में है। ज्ञान गुण मंगल रूप है, दर्शन गुण लोकोत्तम स्वरूप है एवं चारित्र गुण शरणागति रूप है। इस प्रकार रत्नत्रयी का विकास आत्मा की मुक्ति-गमन योग्यता का परिपाक करता है एवं संसार भ्रमण की योग्यता का नाश करता है।

स्वदोष दर्शन एवं परगुण दर्शन

चार वस्तुएँ मंगल हैं, चार वस्तुएँ लोक में उत्तम हैं एवं चार वस्तुएँ शरण ग्रहण करने योग्य हैं। मंगल की भावना ज्ञान-स्वरूप है, उत्तम की भावना दर्शन स्वरूप है एवं शरण की भावना चारित्र स्वरूप है। ज्ञान से राग दोष जाता है, दर्शन से द्वेष दोष जाता है एवं चारित्र से मोह दोष जाता है।

राग जाने से स्वयं के दोष दिखते हैं, द्वेष जाने से दूसरों के गुण दिखते हैं एवं मोह जाने से शरणभूत आज्ञा का स्वरूप जाना जाता है। स्वदोष दर्शन दोष की गर्हा करवाता है, परगुण दर्शन दूसरों की अनुमोदना करवाता है एवं आज्ञा का स्वरूप समझने से आज्ञा की शरण में रहने की वृत्ति पैदा होती है।

गुणवान की आज्ञा ही स्वीकार करने योग्य है। दोष जाने से ही गुण प्रकट होते हैं। आज्ञा का आराधन करने से ही दोष जाता है। अतः मोक्ष का हेतु आज्ञा का आराधन होता है एवं आज्ञा की विराधना ही संसार का कारण होती है। स्वमति-कल्पना का मोह आज्ञा पालन के अध्यवसाय से ही जाता है एवं उसके जाने से शरण स्वीकार करने हेतु बल पैदा होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरिहंत की शरण, सिद्ध की शरण, साधु की शरण एवं केवली प्रज्ञप्त धर्म की शरण अरिहंतादि चारों की लोकोत्तमता के ज्ञान पर आधारित है। इन चारों की लोकोत्तमता इन चारों की मंगलमयता पर आधारित है। उनकी मंगलमयता उसके ज्ञान, दर्शन, चारित्र पर आधारित है एवं ज्ञान, दर्शन, चारित्र की मंगलमयता राग, द्वेष एवं मोह का प्रतिकार करने के सामर्थ्य में निहित है।

योग्य की शरण से योग्यता का विकास

जीव को सबसे अधिक राग स्वयं पर होता है। उस राग के कारण स्वयं में निहित अनन्तानन्त दोषों का दर्शन नहीं होता। स्वयं का राग दूसरों के प्रति द्वेष का आविर्भाव करता है इसी दोष के प्रभाव से गुणदर्शन नहीं होता। स्वदोषदर्शन एवं परगुणदर्शन नहीं होने से मोह का उदय होता है, मोह का उदय होने से बुद्धि तिरोहित होती है एवं यह बुद्धि का आवरण शरणीय की शरण स्वीकार करने में अन्तरायभूत होता है।

योग्य की शरण स्वीकार नहीं करने से अयोग्यता को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता। अपनी अयोग्यता कर्मबन्धन के कारणों के प्रति उदासीन करवाती है एवं कर्मक्षय के कारणों के प्रयोग में प्रतिबन्धक बनती है। कर्मबन्धन के कारणों से पराङ्मुख बनने हेतु एवं कर्मक्षय के कारणों के सम्मुख होने हेतु योग्यता विकसित करनी चाहिए।

योग्य की शरण लेने से योग्यता विकसित होती है। योग्य की शरण लेने की योग्यता स्वदोषदर्शन एवं परगुणग्रहण से उत्पन्न होती है। राग द्वेष की कमी होने से परगुणदर्शन एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वदोषदर्शन होता है एवं राग-द्वेष की कमी ज्ञानदर्शन गुण के विकास होने से होती है। अरिहंतादि की मंगलमयता एवं लोकोत्तमता को देखने सें एवं उनकी शरण स्वीकार करने से ज्ञान-दर्शन गुण का विकास होता है।

दुष्कृत एवं सुकृत

वीतराग परमात्मा निग्रहानुग्रह सामर्थ्य-युक्त एवं सर्वज्ञ-सर्वदर्शित्व गुण को धारण करने वाले होने से सर्वपूज्य हैं। रागदोष जाने से करुणा गुण प्रकट होता है, द्वेष दोष जाने से माध्यस्थ्य भाव प्रकट होता है। करुणा गुण का स्थायीभाव अनुग्रह है एवं माध्यस्थ्य गुण का स्थायीभाव निग्रह है। स्वयं का पक्षपात ही राग है। स्वयं के अतिरिक्त सभी की उपेक्षा ही द्वेष है। राग दुष्कृत-गर्हा का प्रतिबन्धक है। यहाँ दुष्कृत का अर्थ है स्वकृत अनन्तानन्त-अपराध एवं सुकृत का अर्थ है परकृत अनन्तानन्त उपकार। स्वयं के अपराध की निन्दा एवं दूसरों के उपकार की प्रशंसा तभी हो सकती है जब अप्रशस्त राग द्वेष नष्ट हो जायं। ज्ञानदर्शन गुण रागद्वेष का प्रतिपक्षी है अर्थात् रागद्वेष जाने से एक तरफ अनन्त ज्ञानदर्शनगुण प्रकट होता है दूसरी तरफ निग्रहानुग्रह सामर्थ्य प्रकट होता है एवं उन दोनों के कारणभूत करुणा एवं माध्यस्थ्यभाव जाग्रत होते हैं।

वीतराग अर्थात् करुणानिधान एवं माध्यस्थ्यगुण के भण्डार, तथा वीतराग अर्थात् अनन्त ज्ञान, दर्शन स्वरूप केवल ज्ञान एवं केवलदर्शन के स्वामी, सर्ववस्तु को जानने वाले एवं देखने वाले होते हुए भी सभी से अलिप्त रहने वाले, सभी के ऊपर स्वप्रभाव को डालने वाले पर किसी के भी प्रभाव में कभी भी नहीं आने वाले प्रभु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा में स्थित अचिन्त्य शक्ति का स्वीकरण

इस प्रकार वीतरागिता निष्क्रियता स्वरूप नहीं, सर्वोच्च सक्रियता रूप है। वह क्रिया अनुग्रह-निग्रह रूप है तथा अनुग्रह-निग्रह रागद्वेष के अभाव में से उत्पन्न हुई आत्म-रूप है। आत्मा की सहजशक्ति जब आवरण रहित होती है तब उसमें से एक तरफ सर्वज्ञता-सर्वदर्शिता प्रकट होती है तथा दूसरी तरफ निग्रह-अनुग्रह सामर्थ्य प्रकट होता है। उन दोनों को प्रकटीभूत करने का उपाय आवरण रहित होना है। आवरण रागद्वेष तथा अज्ञानरूप हैं। अज्ञान टालने हेतु स्व-अपराध का स्वीकरण तथा परकृत उपकार का अंगीकार तथा इन दोनों के साथ अचिन्त्यशक्तियुक्त आत्मतत्त्व का आश्रय अनिवार्य है। आत्मतत्त्व के आश्रय का अर्थ है आत्मा में स्थित अचिन्त्यशक्ति का स्वीकरण। यह स्वीकरण होने से अनन्तानुबन्धी राग-द्वेष टल जाते हैं। अननुभूतपूर्व समत्वभाव प्रकट होता है। यह समत्वभाव अपक्षपातिता तथा माध्य-स्थ्यवृत्तिता रूप है। स्वदोष ही बड़े से बड़े पक्षपात का विषय है। स्वयं निर्गुण तथा दोषवान होते हुए भी अपने को निर्दोष तथा गुणवान मानने का वृत्तिरूप पक्षपात समत्वभाव से टल जाता है।

वीतराग अवस्था ही परम पूजनीय है

ऐसा माध्यस्थ्यवृत्तिता रूप समत्वभाव द्वेष दोष का प्रतिकार रूप है क्योंकि परकृत उपकार का महत्त्व स्वकृत उपकार के महत्त्व के समान ही है या उससे भी अधिक है। दोनों प्रकार का समत्व राग-द्वेष को निर्मूल कर आत्मा के शुद्ध स्वभाव रूप केवलज्ञान-केवलदर्शन को उत्पन्न करता है। उसमें लोकालोक प्रतिभासित होते हैं परन्तु वह किसी से भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिभासित नहीं होता क्योंकि वह स्वयंभू है। अतः वीतराग अवस्था ही परम पूज्य है तथा उसे प्राप्त करने के उपाय भूत दुष्कृत - गर्हा, सुकृतानुमोदन तथा शरणगमन परम उपादेय हैं--

वीतरागोऽप्यसौ देवो, ध्यायमानो मुमुक्षुभिः ।
स्वर्गापवर्गफलदः शक्तिस्तस्य हि तादृशी ॥१॥

यह देव वीतराग होते हुए भी जब मुमुक्ष द्वारा ध्यायित होता है तब स्वर्गापवर्गरूपी फल को प्रदान करता है क्योंकि उनकी निश्चित रूप से वैसी ही शक्ति है :

वीतरागोऽप्यसौ ध्येयो, भव्यानां स्याद् भवच्छिदे ।
विछिन्न बन्धनस्यास्य तादृग् नैसर्गिको गुणः ॥२॥

यह ध्येय वीतराग होते हुए भी भव्य जीवों को भवोच्छेद में सहायक होता है। बन्धन-मुक्त आत्माओं में यह गुण नैसर्गिक रूप से विद्यमान रहता है।

ध्याताओं का राग-द्वेष का उन्मूलन करना ही वीतराग आत्माओं का स्वभाव है। स्वभावोऽतर्क गोचरः--स्वभाव तर्क का अविषय है। वस्तु का स्वभाव ही स्व-पर के संसार का नाशक है। वस्तु स्वभाव मात्र ही तर्क से अग्राह्य है।

सच्चा सुकृतानुमोदन

दुष्कृत मात्र का प्रायश्चित पदार्थवृत्ति है। परपीडा से दुष्कृत का उपार्जन होता है। अतः उसकी विपक्ष पदार्थवृत्ति का सेवन ही उसके निराकरण का उपाय है।

वृत्तिमात्र मन, वचन, काया से होती है। उसमें दुष्टत्व लाने वाला परपीड़ा का अध्यवसाय है तथा वह अध्यवसाय रागभाव में से या स्वार्थभाव में से उत्पन्न होता है। स्वार्थभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का प्रतिपक्षी भाव परार्थभाव है। अतः परार्थभाव ही भव्यत्व परिपाक का तात्त्विक उपाय है, परन्तु वह परार्थभाव परपीड़ा के प्रायश्चित स्वरूप होना चाहिए।

परार्थभाव से एक ओर नूतन परपीड़ा का वर्जन होता है तथा दूसरी तरफ पूर्वकृत परपीड़ा का शुद्धीकरण होता है। अतः परार्थभाव ही सच्ची दुष्कृतगर्हा है। दुष्कृत गर्हणीय हैं, त्याज्य है, हेय है, ऐसी सच्ची बुद्धि उसे ही उत्पन्न हुई मानी जाती है जो कि सुकृत को स्पष्टभाव से अनुमोदनीय, उपादेय तथा आदरणीय मानता है।

परपीड़ा दुष्कृत है तथा परोपकार सुकृत है। परोपकार में कर्त्तव्यबुद्धि उत्पन्न होना ही दुष्कृत-मात्र का सच्चा प्रायश्चित है। जो परोपकार को कर्त्तव्य मानता है उसमें एक दूसरा गुण भी उत्पन्न होता है जिसका नाम कृतज्ञता है।

अपने लिए दूसरों द्वारा किया गया उपकार जिसकी स्मृति में नहीं हैं वह परोपकार गुण को समझा ही नहीं है। कृतज्ञता गुण सुकृत का अनुमोदन करवाता है तथा उससे उपकारवृत्ति दृढ़ होती है। इतना ही नहीं दूसरों का भला करने का अहंकार भी उससे विलीन हो जाता है। स्वकृत परोपकार अपने लिए दूसरों के द्वारा किए गए उपकार की तुलना में शतांश, सहस्रांश अथवा लक्षांश भाग भी नहीं होता। परार्थभाव के साथ कृतज्ञतागुण संयुक्त हो तो ही परार्थभाव तात्त्विक बनता है।

अरिहंतादि की शरणगमन

परार्थवृत्ति तथा कृतज्ञतागुण से दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानु-मोदन रूप भव्यत्व परिपाक के दोनों उपायों का सेवन होता है, तीसरा उपाय अरिहंतादि चारों की शरण में जाना है। यहाँ शरणगमन का अर्थ है—जो परार्थभाव तथा कृतज्ञता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण के स्वामी हैं उन्हें ही आदर्श मानना, उनके ही सत्कार, सम्मान, आदर तथा बहुमान को स्वयं का कर्त्तव्य समझना।

परार्थभाव तथा कृतज्ञता गुण के सच्चे अर्थी जीवों में उन दो भावों की चरम सीमा तक पहुँचने वालों की शरणागति, भक्ति, पूजा, बहुमान आदि सहज रूप से आ जाते हैं। यदि वे नहीं आवें तो समझना चाहिए कि उसके हृदय में उत्पन्न दुष्कृत-गर्हा अथवा सुकृतानुमोदन का भाव सानुबन्ध तथा ज्ञान-श्रद्धायुक्त नहीं है।

ज्ञान एवं श्रद्धा से विहीन दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन का भाव निरनुबन्ध होता है, क्षणमात्र टिक कर चला जाता है। अतः उसे सानुबन्ध बनाने हेतु उन दो गुणों को प्राप्त करना तथा उनकी चरम सीमा में पहुँचे हुए पुरुषों की शरणागति अपरिहार्य है।

यह शरणागति परार्थभाव तथा कृतज्ञता गुण को सानुबन्ध बनाने हेतु सामर्थ्य प्रदान करती है, वीर्य बढ़ाती है, उत्साह जाग्रत करती है तथा उसी की तरह जब तक पूर्णत्व प्राप्त न हो अर्थात् उन दो गुणों की क्षायिकभाव से सिद्धि न हो तब तक साधना में विकास होता रहता है। उसे अनुग्रह भी कहते हैं। साधना में उत्तरोत्तर विकास कर सिद्धि-प्राप्ति तक पहुँचाने वाले श्रेष्ठ प्रकार के आलम्बनों के प्रति आदर का परिणाम तथा उससे प्राप्त होती सिद्धि उन्हीं का अनुग्रह गिना जाता है। कहा है कि:—

आलम्बनादरोद्भूत प्रत्यूहक्षययोगतः।
ध्यानाद्यारोहणभ्रंशो, योगिनां नोपजायते॥

—अध्यात्मसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऊँचे चढ़ने में आलम्बनभूत होने वाले तत्त्वों के प्रति आदर के परिणाम स्वरूप सिद्धि में बाधक विघ्नों का क्षय होता है तथा उस विघ्नक्षय से योगी पुरुष ध्यानादि के आरोहण से भ्रष्ट नहीं होते हैं।

आलम्बनों के आदर से होते प्रत्यक्ष लाभ को ही शास्त्रकार अरिहंतादि अनुग्रह का कहते हैं।

स्वरूपबोध का कारण

जिसका आलम्बन लेकर जीव आगे बढ़ता है यदि उसके उपकार हृदय में धारण नहीं करे तो फिर वह पतित हो जाता है। अर्थात् परार्थवृत्ति रूपी दुष्कृतगर्हा, कृतज्ञता गुण के पालन स्वरूप सुकृतानुमोदना तथा उन गुणों की सिद्धि को वरण किए हुए महापुरुषों की शरणागति, ये तीनों उपाय मिलकर जीव की मुक्तिगमन-योग्यता विकसित करते हैं तथा भवभ्रमण की शक्ति का क्षय करते हैं। सच्चा दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन दुष्कृत रहित एवं सुकृतवान् तत्त्वों की भक्ति के साथ संयुक्त ही होती है। अतः एकमात्र भक्ति को ही मुक्ति की दूती कहा गया है।

कृतज्ञतागुण सुकृत की अनुमोदना रूप है। परार्थवृत्ति दुष्कृतगर्हा रूप है। दुष्कृतगर्हा रूप परार्थवृत्ति तथा सुकृत की अनुमोदनारूप कृतज्ञताभाव से विशुद्ध अन्तःकरण में शुद्ध आत्मतत्त्व का प्रतिबिम्ब पड़ता है। शुद्ध आत्मतत्त्व अरिहन्त, सिद्ध, साधु तथा केवली कथित धर्म से अभिन्न स्वरूप वाला है।

श्री अरिहंतादि चारों की शरणगमन मुक्ति का आनन्दप्रद कारण है। मुक्ति स्वयं स्वरूपलाभरूप है। स्वरूप का बोध अरिहंतादि चारों के अवलम्बन से होता है। अरिहंतादि चार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का अवलम्बन स्वरूप के बोध का कारण है। आत्मा में आत्मा से आत्मा को जानने का साधन अरिहंतादि चारों का शरण-स्मरण है। इन चारों का स्मरण ही तत्त्व से आत्म-स्वरूप का स्मरण है। जिसको यह बोध हो गया हो कि आत्मा का स्वरूप निश्चय रूप से परमात्मा तुल्य है उसके लिए परमात्म-स्मरण ही वास्तविक शरणागमन है।

आत्मतत्त्व का स्मरण

आत्मतत्त्व का स्मरण विशुद्ध अन्तःकरण में होता है। अन्तःकरण की विशुद्धि दुष्कृतगर्हा एवं सुकृतानुमोदन से होती है। दुष्कृत परपीड़ा रूप है, उनकी तात्त्विक गर्हा तब होती है जब कि परपीड़ा से उपार्जित पापकर्म को परोपकार द्वारा दूर करने का वीर्योल्लास जाग्रत होता है। परार्थकरण का वीर्योल्लास परपीड़ाकृतपाप की सच्ची गर्हा के परिणाम स्वरूप होना है। दुष्कृतगर्हा में परार्थकरण की वृत्ति निहित है। सुकृतानुमोदन में परार्थकरण का हार्दिक अनुमोदन होता है। चतुःशरणागमन में परार्थकरणस्वभाव वाले आत्मतत्त्व का आश्रय है।

आत्मतत्त्व स्वयं ही परार्थकरण एवं परपीड़ा का परिहार स्वरूप है। आत्मा के मूल स्वभाव को प्राप्त करने हेतु ही परपीड़ा का ग्रहण एवं परोपकार गुण का अनुमोदन होता है।

शुद्ध स्वरूप को प्राप्त अरिहंतादि चार सर्वथा परोपकार करने के लिए तत्पर हैं। अतः उस स्वरूप की शरण स्वीकार करने योग्य, आदर एवं उपासना के योग्य होती है। शुद्ध आत्म-तत्त्व सदैव स्वयं के स्वभाव से ही शुद्धीकरण का कार्य करता है। अतः वही पुनः पुनः स्मरणीय, आदरणीय, ज्ञेय, श्रद्धेय एवं सर्वभावेन शरण्य है, शरण लेने योग्य है। जब तक स्वकृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुष्कृत की गर्हा नहीं होती एवं छोटा भी दुष्कृत अनिन्दित रहता है, तब तक यह समझना चाहिए कि स्वपक्षपात रूपी राग-दोष का विकार विद्यमान है। निन्दा के स्थान पर अनुमोदना होने से ही वह मिथ्या है अतः जो वास्तविक अनुमोदना का स्थान है उसकी अनुमोदना भी सच्ची नहीं होती। परकृत अल्प भी सुकृत का अनुमोदन जब तक अवशिष्ट रहता है तब तक अनुमोदना के स्थान पर अनुमोदना के वदले उपेक्षा विद्यमान रहती है तथा वह उपेक्षा भी एक प्रकार की गर्हा हो होती है। सुकृत की गर्हा तथा दुष्कृत का अनुमोदन जब तक आंशिक रूप से भी विद्यमान रहता है तब तक सच्ची शरण प्राप्त नही होती। दुष्कृत का अनुमोदन राग रूप है तथा सुकृत की निन्दा दोष रूप है। उसके मूल में मोह या अज्ञान या मिथ्याज्ञान निहित है। इस मिथ्याज्ञान रूपी मोहनीय कर्म की सत्ता में अरिहंतादि का शुद्ध आत्म-स्वरूप पहचाना नहीं जाता क्योंकि वह राग-दोष रहित है।

वीतराग अवस्था की सूझ-बूझ

राग-द्वेष रहित शुद्ध स्वरूप की सच्ची पहचान होने हेतु दुष्कृत गर्हा तथा सुकृतानुमोदन सर्वांश शुद्ध होने चाहिएँ। ऐसा होने पर ही रागद्वेष रहित अवस्थावान की सच्ची शरणागति प्राप्त हो सकती है तथा यह शरणागति प्राप्त हो तो ही भव-चक्र का अन्त आ सकता है। भवचक्र का अन्त लाने हेतु रागद्वेष रहित वीतराग अवस्था की अन्तःकरण में सूझ-बूझ होनी चाहिए। सूझ का अर्थ है शोध अर्थात् जिज्ञासा तथा बूझ अर्थात् ज्ञान। वीतराग अवस्था की सूझ-बूझ दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन की अपेक्षा रखती है। वीतराग अवस्था का माहात्म्य पहिचानने हेतु हृदय की भूमिका उसके योग्य होनी चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह योग्यता गर्हणीय-निन्दनीय की निन्दा तथा अनुमोदनीय की अनुमोदना के परिणाम से प्रकट होती है। दुष्कृत मात्र की निन्दा होनी चाहिए तथा सुकृत मात्र की अनुमोदना होनी चाहिए। इन दोनों के होने पर ही राग-द्वेष की तीव्रता घट जाती है। राग का अनुराग नहीं होना तथा द्वेष के प्रति द्वेष की वृत्ति होना यह राग-द्वेष की तीव्रता का अभाव है। दुष्कृत गर्हा तथा सुकृतानुमोदन की विद्यमानता में उसकी सिद्धि होती है। इससे वीतरागिता की शरण-गमन वृत्ति जागती है क्योंकि वीतरागिता ही श्रद्धेय, ध्येय तथा शरण्य है। पुनः वीतरागिता अचिन्त्य शक्ति युक्त है, यह अनुभव होता है। रागद्वेषरहित वीतराग अवस्था अचिन्त्यशक्ति-युक्त है। वह उससे विमुख रहने वाले का निग्रह तथा उसके सम्मुख होने वाले पर अनुग्रह करता है।

लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान तथा केवलदर्शन जो आत्मा का सहज स्वरूप है, उस वीतराग अवस्था में ही प्रकाशित उद्भासित होता है, अन्य अवस्था में विद्यमान होने पर भी वह अप्रकट रहता है। केवलज्ञान--केवलदर्शन द्वारा लोकालोक का भाव हस्तामलकवत् प्रतिभासित होता है। वह सभी द्रव्यों के त्रिकालवर्ती सभी पर्यायों का ग्रहण करता है। समय-समय पर ज्ञान से सभी को जानता है तथा दर्शन द्वारा सभी को देखता है।

वीतरागिता की शरण में रहने वाले को उसके ज्ञानदर्शन का लाभ मिलता है। इस ज्ञानदर्शन से प्रतिभासित सभी पदार्थों के सभी पर्यायों आदि की क्रमबद्धता निश्चित होती है जिससे जगत में बने हुए, बन रहे तथा भविष्य में बनने वाले अच्छे तथा बुरे कार्यों में रागद्वेष तथा हर्ष-शोक की कल्पनाएँ नष्ट होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरण गमन द्वारा चित्त का समत्व

समग्र विश्वतन्त्र प्रभु के ज्ञान में दिखाई देता है तथा तदनुरूप प्रवर्तित होता है जिससे प्रभु के अधीन रहने वाले के लिए विश्व की पराधीनता मिट जाती है तथा ऐसी प्रतीति होती है कि प्रभु संसाराधीन नहीं हैं; पर प्रभुज्ञान के अधीन संसार है तथा उससे चित्त का समत्व अखण्ड रूप से प्रकाशित रहता है।

समत्व प्रकाशित होने से आत्मा अखण्ड संवर भाव में रहतो है, नवागन्तुक कर्म रुक जाते हैं तथा पुराने कर्म मुक्त हो जाते हैं जिससे आत्मा कर्मरहित होकर अव्याबाध सुख की भोक्ता होती है। अरिहंतादि चार की शरण का यह अचिन्त्य प्रभाव है।

अरिहंत एवं सिद्ध का वीतराग स्वरूप है, साधु का निर्ग्रन्थ स्वरूप है तथा केवलि-कथित धर्म का स्वरूप दयामय है। धर्म ध्रुव है, नित्य है, अनन्त तथा सनातन है। उसका प्रधान लक्षण दया है। दया में स्वयं के दुःख के द्वेष जितना ही द्वेष दूसरों के दुःखों के प्रति जाग्रत रहता है। स्वयं के सुख की इच्छा जितनी ही इच्छा दूसरों के सुखों के प्रति भी उत्पन्न होती है। यह इच्छा रागात्मक होते हुए भी परिणाम में राग को निर्मूल करने वाली होती है। दया में दूसरों के दुःखों के प्रति स्वयं के दुःख जितना ही द्वेष है; फिर भी वह द्वेष, द्वेष-वृत्ति को अन्त में निर्मूल करता है। जैसे कांटे से ही कांटा निकलता है तथा अग्नि से अग्नि शमित होती है तथा विष से विष नष्ट होता है, इस न्याय के अनुसार रागद्वेष की वृत्ति-रूपी काँटे को निकालने हेतु सर्व जीवों के सुख का राग तथा सर्व जीवों के दुःख का द्वेष अन्य काँटे का काम करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रशस्त कोटि के रागद्वेष रूपी विष को शमित करने हेतु दूसरे विष का काम करता है। स्वयं के सुखविषयक राग तथा दुःखविषयक द्वेष रूपी आर्त्तध्यान की अग्नि को बुझाने हेतु सभी जीवों के सुख की अभिलाषा रूपी राग तथा सभी दुःखी जीवों के दुःखों के प्रति द्वेष धर्मध्यान रूपी अग्नि की आवश्यकता की पूर्ति करता है।

दया धर्म वृक्ष का मूल एवं फल

दया लक्षण धर्म अप्रशस्त रागद्वेष का शल्य दूर करने में साधन रूप बन, जीवों को सदा सर्वदा के लिए रागद्वेषरहित वीतराग अवस्था की प्राप्ति करवाता है। वीतरागावस्था सर्वज्ञता तथा सर्वदर्शिता को प्रदान करने वाली होने से दया-प्रधान धर्म, सर्वज्ञता तथा सर्वदर्शिता को प्रदान करने वाली भी होती है। दया-प्रधान केवलि-धर्म को जो कोई त्रिकरण-योग से यावज्जीवन प्रतिज्ञापूर्वक साधित करने वाले हैं वे साधु निर्ग्रंथ कहलाते हैं। रागद्वेष की गाँठ से बहुत अधिक मुक्त होने से तथा शेष अंश से स्वल्पकाल में ही अवश्य छूटने वाले होने से वे भी शरण्य हैं।

निर्ग्रंथ अवस्था वीतराग अवस्था को अवश्य लाने वाली होने से प्रच्छन्न वीतरागिता ही है। दयाप्रधान धर्म का प्रथम फल निर्ग्रंथता है तथा अन्तिम फल वीतरागिता है। क्षयोपशम भाव की दया का परिपूर्ण पालन ही निर्ग्रंथता है तथा क्षायिकभाव की दया का प्रकटीकरण ही वीतरागिता है।

निर्ग्रंथता (साधु तथा धर्म) प्रयत्न-साध्य दया का स्वरूप है तथा वीतरागिता सहज-साध्य दयामयता है। फिर धर्म हो या धर्मसाधक साधु अथवा साधुपन के फलस्वरूप अरिहंत या सिद्ध परमात्मा हो पर इन सब में दया ही सर्वोपरि है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मवृक्ष के मूल में दया है। अतः धर्मवृक्ष के फल में भी दया ही प्रकट होती है। साधु दया के भण्डार हैं तो अरिहंत तथा सिद्ध भी दया के निधान हैं। दयावृत्ति तथा दया की प्रकृति में तारतम्य भले ही हो पर सभी का आधार एक दया ही है, उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं।

कर्मक्षय का असाधारण कारण

जीव का रूपान्तर करने वाले रसायन के स्थान पर एक दया है इसीलिए तीर्थंकरों ने दया को ही प्रशंसित किया है। धर्मतत्त्व का पालन, पोषण तथा संवर्द्धन करने वाली मात्र दया ही है तथा वह दुःखी एवं पापी प्राणियों के दुःख तथा पाप का नाश करने वाली वृत्ति तथा प्रवृत्ति रूप है तथा क्षायिकभाव में सहज स्वभाव रूप है। वह स्वभाव दुःख रूपी दावानल को एक क्षणमात्र में शान्त करने हेतु पुष्करावर्त्त नाम के बादलों के समान हैं। पुष्करावर्त्त मेघ की धारा जैसे भयंकर दावानल को भी शान्त कर देती है वैसे ही जिनको आत्मा का सहज स्वभाव प्रकट हुआ है उनके ध्यान के प्रभाव से दुःख दावानल में जलते संसारी जीवों का दुःखदाह एक क्षण भर में शमित हो जाता है।

शुद्ध स्वरूप को प्राप्त अरिहंतादि आत्माओं का ध्यान उनके पूजन, स्तवन तथा आज्ञापालन आदि द्वारा होता है। शुद्ध स्वरूप को प्राप्त आत्माओं का ध्यान ही परमात्मा का ध्यान है तथा यह निज शुद्धात्मा का ध्यान है। ध्यान से ध्याता ध्येय के साथ एकता का अनुभव करता है वही समापत्ति है तथा वही कर्मक्षय का एक असाधारण कारण है। निज शुद्ध आत्मा द्रव्य, गुण तथा पर्याय से अरिहंत तथा सिद्ध के समान है। अतः अरिहंत एवं सिद्ध परमात्मा का ध्यान द्रव्य, गुण तथा पर्याय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से स्वयं की शुद्ध आत्मा के ध्यान का कारण बनता है। 'कारण से कार्य उत्पन्न होता है' वाले न्याय से अरिहंत तथा सिद्ध परमात्मा के ध्यान से सकल कर्म का क्षय होने से स्वयं का शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है।

कर्मक्षय का असाधारण कारण शुद्ध स्वरूप का ध्यान है। कहा गया है कि:--

मोक्षःकर्मक्षयादेव, स चात्मज्ञानतो भवेत्।
ध्यानसाध्यं मतं तच्च, तद् ध्यानं हितमात्मनः ॥

सकल कर्म के क्षय से मोक्ष उत्पन्न होता है तथा सकल कर्म का क्षय आत्मज्ञान से होता है। आत्मज्ञान परमात्मा के ध्यान से प्रकट होता है जिससे स्वयं के शुद्ध आत्म-स्वरूप का लाभ रूप मोक्ष प्राप्त करने हेतु परमात्मा के ध्यान में लीन होना चाहिए क्योंकि वह ध्यान ही आत्मा को मोक्ष सुख का असाधारण कारण होने से अत्यन्त हितकारी है।

स्वरूप की अनुभूति

अरिहंतादि चारों की शरण शुद्ध आत्म-स्वरूप का स्मरण कराने वाली होने से तथा उनके ध्यान में ही तल्लीन कराने वाली होने से तत्त्वतः शुद्ध आत्म-स्वरूप की ही शरण है। शुद्ध आत्म-स्वरूप की शरण ही परम समाधि को प्रदान करने वाली होने से परम उपादेय है। इसकी पात्रता दुष्कृत की गर्हा तथा सुकृतानुमोदन से प्राप्त होती है। अतः दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदना भी उपादेय हैं।

दुष्कृत-गर्हा तथा सुकृतानुमोदना सहित अरिहंतादि चार की शरण भव्यत्व परिपाक के उपाय के रूप में शास्त्र में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णित है, यह युक्ति तथा अनुभव से भी कहा गया है। दुष्कृत गर्हा तथा सुकृतानुमोदन पदार्थवृत्ति एवं कृतज्ञताभाव की उत्तेजक होने से अन्तःकरण की शुद्धि करती है, यह युक्ति है तथा शुद्ध अन्तःकरण में ही परमात्म स्वरूप का प्रतिविम्ब पड़ सकता है यह सर्वयोगी पुरुषों का भी अनुभव है।

समुद्र अथवा सरोवर जब निस्तरंग होता है तभी उसमें आकाशादि का प्रतिविम्ब पड़ सकता है उसी तरह अन्तःकरण रूपी समुद्र अथवा सरोवर जबसंकल्प-विकल्प रूपी तरंगों से रहित बनता है तभी उसमें अरिहंतादि चारों का तथा शुद्धात्म का प्रतिविम्ब पड़ता है।

अन्तःकरण को निस्तरंग तथा निर्विकल्प बनाने वाली दुष्कृत-गर्हा तथा सुकृतानुमोदन का शुभ परिणाम है एवं उसमें शुद्धात्मा को प्रतिबिम्बित करने वाले अरिहंतादि चारों का स्मरण तथा शरण है।

स्मरण ध्यानादि से संभूत है तथा शरणगमन आज्ञा-पालन के अध्यवसाय से होता है। आज्ञा-पालन का अध्यवसाय निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि को देने वाला है। निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि का अर्थ है शुद्धात्मा के साथ एकता की अनुभूति। इसे स्वानुभूति कहते हैं।

इस प्रकार परम्परा से दुष्कृत-गर्हा तथा सुकृतानुमोदन तथा साक्षात् श्री अरिहंत आदि चार की शरणगमन निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि-स्वरूपानुभूति का कारण बनता है। अतः शास्त्र इन तीनों को जीव का तथाभव्यत्व अर्थात् मुक्ति गमन योग्यत्व परिपक्व करने वाल कहते हैं यह यथार्थ है।

दुर्लभ मानव जीवन में इन तीनों साधनों का भव्यत्व-परिपाक के उपाय के रूप में आश्रय लेना ही प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा का परम कर्त्तव्य है।

***

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महामंत्र की अनुप्रेक्षा

द्वितीय किरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रम

१.	प्रभुआज्ञा का स्वरूप	१
२.	आज्ञा का साम्राज्य	२
३.	उत्कृष्ट अ ,मोदना एवं गर्हा	३
४.	नमस्कार से माध्यस्थ्य परिणति	३
५.	नमस्कार मर्मस्पर्शी	४
६.	ज्ञानचेतना का आदर	४
७.	श्रवण मनन निदिध्यासन	५
८.	अमनस्कता का मंत्र	६
९.	सम्मान का सर्वोत्कृष्ट दान	७
१०.	सर्वोत्कृष्ट शरणागति	८
११.	कल्याण का मार्ग	९
१२.	मंत्रचैतन्य की जागृति	९
१३.	शब्दब्रह्म द्वारा परब्रह्म की उपासना	१०
१४.	कृतज्ञता एवं स्वतन्त्रता	११
१५.	शांतरस का उत्पादक	१२
१६.	नमो मंत्र अनाहतस्वरूप	१३
१७.	रुचि अनुयायी वीर्य	१३
१८.	अनाहतभाव का सामर्थ्य	१४
१९.	नमस्कार प्रथम धर्म क्यों ?	१५
२०.	मिथ्याभिनिवेश का परम औषध	१५
२१.	नम्रता एवं आधीनता	१६
२२.	नमस्कार सभी धर्मों का मूल	१७
२३.	मंत्र के अनेक अर्थ	१७
२४.	अक्षयफल देने वाला दान	१८
२५.	नमो द्वारा सर्व समर्पण	१९
२६.	नमो से होती भक्ति एवं पूजा की क्रियाएं	२०
२७.	सभी अवस्थाओं में कर्त्तव्य	२१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८. ज्ञान-ध्यान एवं समता २२
२९. वृद्धि, एकता एवं तुल्यता २२
३०. चिन्मात्र समाधि का अनुभव २४
३१. नमो पद में निहित अमृतक्रिया २४
३२. अमृतक्रिया के लक्षण २५
३३. नमो मंत्र की अर्थभावना २६
३४. श्री नमस्कारमंत्र में पुण्यानुवंधी पुण्य २७
३५. ननस्कार शास्त्रों का महान् आदेश २८
३६. शुद्ध चिद्रूपरत्न २९
३७. ज्ञानादि से एकता एवं रागादि से भिन्नता ३१
३८. दुःख भावित ज्ञान ३३
३९. सत्संग से निस्तरंग अवस्था का कारण ३३
४०. आलम्बन के प्रति आदर ३५
४१. एकत्व पृथकत्व विभक्त आत्मा ३६
४२. चैतन्य की साधना का पंथ ३६
४३. तात्त्विक भवनिर्वेद एवं मोक्षाभिलाष ३८
४४. एक में सब एवं सब में एक ३८
४५. तात्त्विक नमस्कार ४०
४६. पापनाशक एवं मंगलोत्पादक मंत्र ४०
४७. सुख-दुःख-ज्ञाता एवं राग-द्वेष द्रष्टा ४१
४८. भक्ति एवं मैत्री का महामंत्र ४२
४९. प्रथम पद में समग्र मोक्षमार्ग ४४
५०. सात धातु एवं दश प्राण ४५
४१. परमात्म समापत्ति ४६
५२. मंत्रात्मक दो पद ४७
५३. नमामि सव्वजीवाणं ४७
५४. खमामि सव्वजीवाणं ४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५५. नमो पद का महत्व ४९
५६. नमोपद से अहन्ता ममता का त्याग ५०
५७. अव्यय पद ५०
५८. निर्मल वासना ५१
५९. परमेष्ठि नमस्कार से समत्व की सिद्धि ५२
६०. पांच प्रकार के गुरु ५३
६१. ध्यान एवं लेश्या ५३
६२. लेश्याविशुद्धि एवं स्नेहपरिणाम ५४
६३. कृतज्ञतागुण का विकास ५५
६४. नमस्कार में नम्रता ५७
६५. सर्वश्रेष्ठ महामंत्र ५८
६६. त्रिकरणयोग का हेतु ५९
६७. सच्ची मानवता ५९
६८. श्री पंचपरमेष्ठिमय विश्व ६०
६९. श्री पंचपरमेष्ठि का ध्यान ६१
७०, नवकार में भगवद्भक्ति ६२
७१. श्री नमस्कारमंत्र का स्मरण ६३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुप्रेक्षा

(द्वितीय किरण)

प्रभु आज्ञा का स्वरूप

आस्रवो भवहेतुः स्यात्, संवरो मोक्षकारणम् ।
इतीयमार्हतीदृष्टिरन्यदस्याः प्रपंचनम् ॥

अर्थ—आस्रव सर्वथा हेय है तथा संवर उपादेय है। आस्रव संसार का कारण है तो संवर मोक्ष हेतु। श्री अरिहन्त परमात्मा की आज्ञा का संक्षेप में यही परम रहस्य है। अन्य सब कुछ इसी का विस्तार मात्र है।

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग ये पाँच आस्रव हैं। सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकषाय तथा अयोग ये पांच संवर हैं।

श्री पंचमंगल महाश्रुतस्कन्ध में नमस्कार की पाँच वस्तुयें हैं, श्री अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु। इस पंचक में आस्रव का अभाव है तथा संवर की पूर्णता है। इस पंचक को नमस्कार करने का अर्थ संवर को ही नमस्कार करना है। संवर का अनुगमन प्रभु की आज्ञा है। फिर जब यह पंचक आस्रव से रहित है तो इसको नमन करने का तात्पर्य आस्रव त्याग को ही नमस्कार है क्योंकि आस्रव का त्याग प्रभु की आज्ञा है। इसीलिए इस पंचक के नमस्कार में संवर का सम्मान है तथा आस्रव की निन्दा है। परमेष्ठि को नमस्कार करने से सुकृत की अनुमोदना तथा दुष्कृत की निन्दा होती है। सुकृत की अनुमोदना से शुभ का, कुशलता का अनुबन्ध होता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं अशुभ तथा अकुशलता के अनुबन्ध का विच्छेद होता है। परमेष्ठि नमस्कार में परमात्मा की आज्ञा का बहुमान होता है इससे आज्ञा पालन का अध्यवसाय तीव्र होता है तथा आज्ञा की विराधना का अध्यवसाय समाप्त होता है।

आज्ञा का साम्राज्य

परमेष्ठि नमस्कार प्रभु की आज्ञा के साथ अनुकूल सम्बन्ध स्थापित करवाता है। प्रभु की आज्ञा का साम्राज्य तीनों भुवनों में प्रवर्तित है। समस्त विश्व का प्रवर्तन आज्ञा के आधीन है। आज्ञा की अवहेलना करने वाला दण्ड का पात्र बनता है तथा प्रभु की आज्ञा का आराधक उन्नतिशील बनता है। आज्ञा पालक निर्भय होता है। आज्ञा एक दीप है, आज्ञा एक त्राण है, आज्ञा शरण है आज्ञा ही गति है तथा आज्ञा ही दुर्गति में पड़े हुए मनुष्य का आलम्बन है। परमेष्ठि नमस्कार में आज्ञा-आज्ञापालक तथा आज्ञा प्रदाता को नमस्कार होने से यह भव्य जीवों को दीप सदृश प्रकाशित करता है अथवा भवसमुद्र में द्वीप की तरह आधार प्रदान करता है। परमेष्ठि नमस्कार अनर्थ तथा अनिष्ट का घात करता है। यह भवभय से पीड़ित को शरण प्रदान करता है, दुःख दारिद्रय से बचने का मार्ग बताता है और भवकूप में पड़ते हुए जीवों का आलम्बन स्वरूप बनता है प्रभु की आज्ञा में जितने गुण हैं उन सबको प्राप्त करने का अधिकारी परमेष्ठि को नमस्कार करने वाला है। इसीलिए परमेष्ठि नमस्कार ही सार पोटली है, रत्न की पेटी है, ढंका हुआ खजाना है, धर्मरूपी स्वर्ण की छाब है तथा है मुक्ति के मुसाफिर भव्य आत्मा के लिए देवाधिदेव का परम प्रसाद। परमेष्ठि नमस्कार का आराधक आज्ञा का आराधक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है और आज्ञा का आराधक ही शिवसुख को प्राप्त करता है ।

उत्कृष्ट अनुमोदना एवं उत्कृष्ट गर्हा

नमस्कार की चूलिका सम्यक्त्वरूपी संवर को कहते हैं। साधुओं को किया गया नमस्कार सर्वविरति संवर को प्रकट करता है, आचार्यों तथा उपाध्यायों को किया गया नमस्कार अप्रमाद संवर को व्यक्त करता है, वैसे ही अरिहन्त तथा सिद्धों को किया गया नमस्कार क्रमशः अकषाय संवर एवं मुख्यरूप से अयोग संवर को व्यक्त करता है। ये पाँचों नमस्कार पाँच प्रकार के संवरों को पुष्ट करते हैं। अतः परम मंगलस्वरूप है। वे पाँचों प्रकार के आस्रवों के कट्टर विरोधी होने से उन्हें समूल नष्ट करते हैं। परमेष्ठि नमस्कार से दुष्कृतों की सर्वोत्कृष्ट गर्हा होती है तथा सुकृत मात्र की सर्वोत्कृष्ट अनुमोदना होती है। दुष्कृतमात्र को त्यक्त कर सुकृतमात्र के सेवन करने की प्रभु की आज्ञा है। इसलिए पंचमंगल की नित्य आराधना करने वाला प्रभु की आज्ञा का परम आराधक होता है। प्रभु की आज्ञा छह जीवनिकायों की हितसम्पादिका है। अतः पंचमंगल का सेवन करने वाला छओं जीवनिकायों का हित-चिन्तक होता है। समस्त जीवराशि पर हित का परिणाम ही मित्रता है। अतः मैत्रीभाव धारण करने वाला परमात्मा की आज्ञा का आराधक होता है।

नमस्कार से माध्यस्थ्य परिणति

नमस्कार इसलिए मन्त्र है कि वह छह जीवनिकायो के साथ गुप्त भाषण करता है, उनके हित की मन्त्रणा करता है तथा उनके द्वारा पुरुषार्थ को आमन्त्रण देता है। पंचमंगल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमात्मा की आज्ञा का मूर्तिमन्त-स्वरूप है। परमात्मा की आज्ञा का स्वरूप है--निन्दित तथा त्याज्य का त्याग, उपादेय का उपादन तथा उपेक्षरणीय की उपेक्षा। मिथ्यात्व आदि त्याज्य है, सम्यक्त्व आदि उपादेय तथा अनात्मतत्त्व उपेक्षरणीय है। परमेष्ठि नमस्कार से मिथ्यात्व आदि पापों का नाश होता है, सम्यक्त्व आदि गुणों का स्वीकार होता है तथा अजीवतत्त्व की उपेक्षा होती है। उपेक्षा का अर्थ है माध्यस्थ्य परिणति। अजीवतत्त्व न तो राग के योग्य है तथा न द्वेष योग्य है। ऐसी परिणति (तटस्थ मनोवृत्ति) ही माध्यस्थ्य परिणति है। जीवमात्र के प्रति मैत्री, अजीवमात्र के प्रति माध्यस्थ्य तथा जीव की शुभाशुभ अवस्थाओं के प्रति क्रमशः प्रमोद तथा कारुण्य आदि भाव परमेष्ठि नमस्कार द्वारा सम्पुष्ट होते हैं।

नमस्कार मर्मस्पर्शी

आत्मज्ञान प्राप्त करने का मुख्य साधन विचार है। यह विचार दो रूप में प्रवर्तित होता है। एक वैराग्य के रूप में व दूसरा मैत्री के रूप में अर्थात् जीवमात्र के प्रति मैत्रीरूप तथा जड़मात्र मात्र के प्रति वैराग्य रूप। नमस्कार दोनों प्रकार के विचारों को प्रेरित करता है। परमार्थभूत आत्मा सत्पुरुषों में होती है। परमेष्ठि नमस्कार सत्पुरुषों की परमार्थभूत आत्मा को नमस्कार है, इसीलिए परमेष्ठि नमस्कार समस्त शास्त्रों का मर्मरूप है। शास्त्र तो मार्ग बनाते हैं। उसका मर्म सत्पुरुषों के अन्तर में है तथा परमेष्ठि नमस्कार उस मर्म को छूता है।

ज्ञान चेतना का आदर

जगत में यदि कोई सर्वश्रेष्ठ वस्तु है तो वह शुद्ध चैतन्य है। परमेष्ठि नमस्कार में उसका बहुमान होता है। शुद्ध चैतन्य स्वरूप का बहुमान स्वयं के शुद्ध पद को प्रकट करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयं की शुद्ध चेतना ज्ञान स्वरूप है। परमेष्ठि नमस्कार से कर्मचेतना की तथा कर्मफल की उपेक्षा होती है तथा ज्ञान-चेतना का आदर होता है। ज्ञानचेतना राग आदि विकारों से रहित होती है, अतः वीतराग स्वरूप है तथा ज्ञान सहित है जिससे सर्वज्ञ स्वरूप है। परमेष्ठि नमस्कार में आत्मा का वीतराग स्वरूप तथा सर्वज्ञ स्वरूप पूजित होता है। नमस्कार का तात्त्विक अर्थ पूजा है। द्रव्य तथा भाव का संकोच ही पूजा है। द्रव्य संकोच का सम्बन्ध वाणी तथा काया से है तथा भाव संकोच मन से सम्बन्धित है। इस प्रकार मन, वाणी तथा काया से वीतराग स्वरूप तथा सर्वज्ञ स्वरूप ज्ञानचेतना का आदर तथा उसको धारण करने वाले सत्पुरुषों की सतत पूजा ही नमस्कार का तात्पर्यार्थ है। वीतरागिता की पूजा ही प्रभु की आज्ञा है। वीतरागिता ही सर्वज्ञता का अवंध्यकारण होती है। भक्ति की प्रयोजना तथा सेव्यता (सेव्यभाव) की निरन्तरता वीतराग आदि गुणों से युक्त होने के लक्षण हैं। परमेष्ठि नमस्कार में वही वस्तु पूजित होती है। अतः विपरीत वस्तु असेव्य होने से अपूज्य होती है। नमस्कार से पूज्य की पूजा तथा अपूज्य की अपूजा साधित होती है। इसीलिए यह महामन्त्र है। सत्पुरुषों के लिए नमस्कार सेव्य है आराध्य है तथा मान्य है।

श्रवण मनन निदिध्यासन

आज्ञा पदार्थ आप्त वचन है। आप्त ही यथार्थ वक्ता होता है। यथार्थ वक्ता का यथार्थ वचन ही श्रवण पदार्थ है। मनन पदार्थ युक्ति को ढूंढता है। आस्रव हेय होता है क्योंकि वह स्व पर पीड़ाकारक होता है। संवर उपादेय होता है क्योंकि वह स्व पर हितकारक होता है। निदिध्यासन पदार्थ ऐदंपर्य बताता है। आज्ञा का ऐदंपर्य आत्मा है। आस्रव की हेयता तथा संवर की उपादेयता का ज्ञान जिसको होता है वही आत्मा आज्ञा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूप है। प्रवृत्ति निवृत्ति रूप आज्ञा हेयोपादेयार्थक होती है। तथा यह केवल आज्ञा का व्यावहारिक अर्थ है। आज्ञा का नैश्चयिक अर्थ स्वरूपरमणता है। स्वरूपरमणता ही परमार्थ-शरण भूत है। नमस्कार का व्यावहारिक अर्थ आस्रव त्याग तथा संवरसेवन का बहुमान है। नमस्कार का पारमार्थिक अर्थ आस्रव का त्याग करने वाली तथा संवर का सेवन करने वाली विशुद्ध आत्मा है। विशुद्ध आत्मा ज्ञायक रूप है। स्वभाववान आत्मा में परिणमन ही नमस्कार का ऐदंपर्यार्थ है तथा वही आत्म साक्षात्कार का अनन्तर कारण है ::

आत्मा वा रे द्रष्टव्यो, श्रोतव्यो, मंतव्यो, निदिध्यासितव्यो।

श्रवण, मनन, निदिध्यासन से आत्मा का साक्षात्कार होता है। साक्षात्कार ही मुख्य प्रयोजन है। उसका साधन निदिध्यासन, निदिध्यासन का साधन मनन तथा मनन का साधन श्रवण है। श्रवण का अधिकारी मुमुक्षु होता है। मुमुक्षु के लक्षण शम दम-तितिक्षा तथा श्रद्धा-समाधान तथा उपरति है। उसका मूल विराग है तथा विराग का मूल नित्य अनित्य आदि का विवेक तथा विचार है।

अमनस्कता का मन्त्र

'नमो' मन्त्र सर्वप्राणों को उत्क्रमण करवाता है। 'नमो' मन्त्र का उच्चारण मात्र करने से ही प्राणों का उर्ध्वीकरण-उत्क्रमण होता है। दूसरे अर्थ में 'नमो' मन्त्र सर्वप्राणों को परमात्म-तत्त्व में परिणमन करवाता है प्राणों को मन के ऊपर ले जाने में 'नमो' न्त्रम सहायता करता है। अमनस्कत्व और उन्मन भाव की अवस्था 'नमो' मन्त्र के पुनः पुनः स्मरण से उत्पन्न होती है। कहा जाता है विप्रतीपं मनोनमः। यह 'नमो' मनकी विशुद्ध दशा में गतिप्रद मन्त्र है। मनसातीतं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवस्था 'नमो' मन्त्र से साधक को सहज ही प्राप्त होती है। 'नमो' नमन-परिणमन एकार्थक हैं। जिससे आत्मा का शुद्ध स्वरूप में परिणमन होता है। वह 'नमो' मन्त्र है। अतः यह परम रहस्यमय माना जाता है।

सन्मान का सर्वोत्कृष्ट दान

दान का आनन्द जीवन का सर्वश्रेष्ठ आनन्द है। यह 'नमो' सर्वश्रेष्ठ पुरुषों को दिया जाने वाला सर्वश्रेष्ठ दान है। सभी दानों में श्रेष्ठ दान सन्मान का दान है। दान के सर्वश्रेष्ठ पात्र श्री पंच परमेष्ठि भगवान् हैं। जो चित्त के शुभ भाव से पंच परमेष्ठि भगवान् को 'नमो' मन्त्र से निरन्तर सन्मान का दान करते हैं वे मानव जन्म प्राप्त कर अंश मात्र भी करने योग्य कार्य करके कृतार्थता का अनुभव करते हैं। परमेष्ठि नमस्कार में कृतज्ञता का भाव रहता है। दुर्गति में पड़ते हुए जीवों को श्री परमेष्ठि भगवान् नमस्कार मात्र से परम आलम्बन प्रदान करते हैं तथा अपने विशुद्ध जीवन से परम आदर्श तथा भवसागर तरणार्थ नौका सदृश परमतीर्थ को स्थापित कर लाखों, करोड़ों तथा असंख्य जीवों को रत्नत्रय (त्रिरत्न) — का मुक्तहस्त से दान करते हैं।

ऐसे परमदाता को उनके योग्य सन्मान देना ही सभी कृतज्ञ जीवों का परम कर्त्तव्य है। कृतज्ञता ही पात्रता समायोजन एवं योग्यता विकसित करने का प्रथम सोपान है। जो उपकारी जनों के प्रति निरन्तर कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करते हैं वे ही भवारण्य में सुरक्षित रहते हैं। वे जहाँ भी जाते हैं वहां यह कृतज्ञता का गुण उनका उत्तम आत्माओं से समागम करवाकर उनके स्नेह का भाजन बनवाता है। कहा है—"क्षणमपि सज्जन संगतिरेका भवति भवार्णव तरणे नौका" (अर्थात् क्षणमात्र भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की हुई सज्जनों की संगति संसार समुद्र को पार करने हेतु नौका सदृश होती है) सत्पुरुषों की संगति करने वाले को योग्य शुभ पुष्प का अर्जन कृतज्ञताभाव के कारण अवश्य होता है। इस जगत में अर्थ का दान करने वाले अभी भी मिल सकते हैं पर हृदय से सन्मान का दान प्रदान करने वाले दुर्लभ होते हैं। जिनका चित्त नमस्कार में नहीं लगता है उनको समझना चाहिये कि योग्य को योग्यदान देने की उदारता उनके हृदय में अभी प्रकट नहीं हुई है। कृपणता का नाश कृतज्ञता से होता है तथा कृतज्ञता का पालन सर्वश्रेष्ठ दातारों को सन्मान का दान देने से होता है।

सर्वोत्कृष्ट शरणागति

श्री नमस्कार महामन्त्र ही सर्वोत्कृष्ट गर्हा, सर्वोत्कृष्ट अनुमोदना तथा सर्वोत्कृष्ट शरणागति का मन्त्र है। सभी पापों को सर्वथा नष्ट करने का प्रणिधान श्री नमस्कार महामन्त्र में है जो सर्वोत्कृष्ट गर्हा का परिणाम सूचित करता है। सर्व-मंगलों में प्रधान तथा प्रथम मंगल नमस्कार है जो सर्वोत्कृष्ट शरणागति का तथा सर्वोत्कृष्ट अनुमोदना का परिणाम है। 'नमो' पद सर्वोत्कृष्ट शरणागति का सूचक है क्योंकि उसमें एक तरफ हाथ, सिर आदि सर्वाङ्ग का समर्पण है एवं दूसरी तरफ उसके द्वारा आत्मा के सर्व प्रदेशों का समर्पण है। तीन करण, तीन योग, सात धातु, दस प्राण, सर्वरोम तथा ~~सर्वरोम तथा~~ प्रदेशों से होती शरणागति श्री नमस्कार महामन्त्र का सर्वोत्कृष्ट वाच्य है। भव्यत्व परिपाक की समग्र सामग्री एक साथ संगृहीत हो नमस्कार महामन्त्र में समायोजित हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्याण का मार्ग

श्री नमस्कार महामन्त्र के उपकार अनन्त हैं तथा उसने मुक्तिगमन हेतु अनन्त-आत्माओं को परमावलम्बन प्रदान किया है। श्री नमस्कार महामन्त्र का आधार लेकर सभी तीर्थंकरों, गणधरों, श्रुतधरों एवं दूसरे ज्ञानी महापुरुषों ने परमपद प्राप्त किया है। यह हमारा कितना सौभाग्य है कि सभी महापुरुषों को आधार प्रदान करने वाला ऐसा महामन्त्र हमें अभी मिला है। इस प्रकार श्री नमस्कार महामन्त्र का गौरव हृदय में धारण कर उसका आलम्बन लेने वाला दुर्गति में पड़ती हुई अपनी आत्मा को बचा सकता है तथा सद्गति को परम सुलभ बना सकता है। आलम्बन के आदर से उत्पन्न पुण्य ही विघ्नों का क्षय करता है एवं पतनोन्मुख अपनी आत्मा को ठीक समय उबार लेता है। नीचे गिरते हुए को बचाने वाले एवं ऊँचे चढ़ने में आलम्बनभूत होने वाली प्रत्येक वस्तु को परम आदर से देखने की हमें आदत डालनी चाहिए। इस आदत का अभ्यास ही जीव को आत्मविकास में आगे बढ़ाने वाला होता है। श्री नवकारमन्त्र इस प्रकार कल्याण का मार्ग सिखाता है।

मन्त्र-चैतन्य की जागृति

श्री नमस्कार मन्त्र के उच्चारण के साथ ही प्राणों की गति उर्ध्व-उच्च होने लगती है एवं सभी प्राण (पाँच इन्द्रिय—मन वचन काया श्वोसोच्छ्‌वास आयु) एक साथ परमात्मा से सम्बद्ध हो जाते हैं। मन्त्र के उच्चारण के साथ ही मन एवं प्राण उर्ध्व गति को धारण करते हैं, कर्म का क्षयोपशम होता है, कर्म की अशुभ प्रकृति का स्थिति-रस घट जाता है एवं शुभ प्रकृति का स्थिति-रस बढ़ जाता है। सत् क्षयोपशम होने से सद्बुद्धि उत्पन्न होती है एवं यह सद्बुद्धि गुरुतत्त्व का कार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करती है। सद्बुद्धि द्वारा तत्त्व की महिमा ज्ञात होती है जिससे अन्तर्मुखी वृत्ति बढ़ने के साथ परमात्मतत्त्व की अनुभूति होने लगती है। इस प्रकार मन, मन्त्र, प्राण तथा देव, गुरु एवं आत्मा की एकता साधित होती है। उसे ही मन्त्रशास्त्र में मन्त्र चैतन्य का उद्भव होना कहा जाता है। कहा है कि--

मंत्रार्थं मंत्रचैतन्यं, यो न जानाति तत्त्वतः
शत-लक्ष-प्रजप्तोऽपि, मंत्रसिद्धिं न ऋच्छति ॥

अर्थात् मन्त्र के अर्थ को एवं मन्त्र चैतन्य को जो तत्त्वतः नहीं जानता है उसे कोटि जाप से भी मन्त्र सिद्धि नहीं होती है।

भाषावर्गणा से श्वासोच्छ्वासवर्गणा सूक्ष्म है एवं मनो वर्गणा उससे भी अधिक सूक्ष्म है। उससे भी अधि सूक्ष्म कर्म वर्गणा है। उसके क्षय एवं क्षयोपशम से अन्तर्मुखी वृत्ति तथा आत्मज्ञान होने लगता है। उसी का नाम मन्त्र चैतन्य की जागृति है। कहा है कि--

गुरुमंत्रदेवताऽऽत्ममनः पवनानामैक्यनिष्कलनादन्तरात्म-संवित्तिः।

अर्थात् मन, मन्त्र, तथा पवन का तथा देव, गुरु और आत्मा का पारस्परिक कथंचिद् ऐक्य सम्बन्ध है यह जानने से अन्तरात्म भाव का संवेदन होता है।

शब्द ब्रह्म द्वारा परब्रह्म की उपासना

श्री नमस्कार मन्त्र ज्ञायक भाव को नमस्कार करवाना सिखाता है। ज्ञायक भाव आत्मा का स्वभाव है। राग-द्वेषादि भाव विभाव हैं। विभावोन्मुख आत्मा को स्वभावोन्मुख करना ही नमस्कार मन्त्र का कार्य है। अरिहं वर्णमाला का एवं शब्द ब्रह्म का संक्षिप्त स्वरूप है। शब्द ब्रह्म परब्रह्म का वाचक है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं परब्रह्म शुद्धज्ञान स्वरूप है क्योंकि उसमें विशुद्धज्ञान ही है एवं उसके अतिरिक्त दूसरे कोई भाव समाविष्ट नहीं हैं। वही शुद्ध पर ब्रह्म-स्वरूप ही उपास्य है, पूज्य है एवं आराध्य है। इसके अतिरिक्त दूसरा स्वरूप अनुपास्य, अपूज्य एवं असेव्य है, यह जैन-सिद्धान्त है। सेव्य भाव का अवच्छेदक वीतरागत्व आदि गुणवत्व हैं। वीतरागत्व सर्वज्ञत्व के साथ व्याप्त है। अतः वीतराग एवं सर्वज्ञ जैसे निर्दोषकेवलज्ञानस्वरूप की उपासना ही परमपद की प्राप्ति का बीज है।

कृतज्ञता एवं स्वतन्त्रता

'नमो' कृतज्ञता का मन्त्र है एवं स्वतन्त्रता का भी। कृतज्ञता गुण व्यवहार धर्म का आधार स्तम्भ है एवं स्वतन्त्रता गुण निश्चय धर्म का मूल है। आत्म-द्रव्य अनादि कर्म सम्बद्ध होते हुए भी कर्म द्रव्य एवं आत्म द्रव्य कथंचित् भिन्न हैं। आत्मा एवं कर्म का संयोग सम्बन्ध है तथा इसका अन्त वियोग में होता है। कर्म सम्बन्ध का आदि भी है तथा अन्त भी। आत्म द्रव्य अनादि अनन्त है। आत्म द्रव्य की स्वतन्त्रता का अनुभव कर जगत को बताने वाले श्री तीर्थंकर भगवान् अनन्त उपकारी हैं। उनके उपकार को हृदय में धारण कर उनके प्रति नित्य आभार वृत्ति रख उस उपकार का बदला चुकाने में अपने असामर्थ्य को निरन्तर स्वीकार करना ही व्यवहार धर्म का मूल है और यही निश्चय धर्म प्राप्त करने की सच्ची योग्यता है। कृतज्ञता गुण के पालन द्वारा 'नमो' मन्त्र की उपासना स्वतन्त्रता की तरफ ले जाने वाली सिद्ध प्रक्रिया है इसलिए 'नमो' मन्त्र को सेतु से भी उपमित किया जा सकता है। श्री नमस्कार मन्त्र भवसागरतरण हेतु तथा मोक्षनगर पहुँचने हेतु सेतु का काम करता है, अर्थात् वह व्यक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से अव्यक्त में ले जाता है। प्रकृति से पराङ्मुख बनाकर पुरुष के सन्मुख ले जाता है। अतः वह दीप-द्वीप है, त्राण-शरण है, गति एवं आधार है। 'नमो' मन्त्र दुष्कृत की गर्हा कराने वाला होने से क्रमशः दीप, द्वीप एवं त्राण है। सुकृतानुमोदन कारक होने से गति एवं प्रतिष्ठा रूप है, सुकृत तथा दुष्कृत से परे विशुद्ध आत्मतत्त्व के अभिमुख ले जाने वाला होने से परम शरणागमनरूप भी है इस प्रकार नमो मन्त्र भव्य जीवों के लिए परम आलम्बन रूप एवं परम आधार रूप बनकर भवदुःख विच्छेद तथा शिवसुख की प्राप्ति करवाने में सहायक होता है। दूसरे प्रकार से यों भी कहा जा सकता है कि नमो मन्त्र स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने का मन्त्र है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम की ओर जाने की प्रेरणा भी 'नमो' मन्त्र से ही मिलती है। अणु से अणु तथा महान् से महान् आत्मतत्त्व की प्राप्ति अर्थात् 'अणोरणीयाम्' और महतोमहीयान्' दोनों विशेषणों वाली परमपद सिद्धि 'नमो' मन्त्र से होती है।

शान्त रस का उत्पादक

नमो अरिहंताणं महामन्त्र है, शाश्वत है एवं शांत रस का पान करवाने वाला है। शांत रस का अर्थ है रागद्वेष विनिर्मुक्त विशुद्ध ज्ञान व्यापार को नमस्कार। अरिहंमोहादि शत्रुओं का नाशक है अतः त्राण स्वरूप है। 'अरिहं' शब्द शत्रु नाशक, पूज्यता का वाचक तथा शब्द ब्रह्म का सूचक होने से शांत रसोत्पादक है। शांतरस, समतारस, उपशम रस–ये सभी शब्द एकार्थक हैं। रागद्वेष एवं सुख दुःख के संवेदन से परे ज्ञान रस ही शम रस है, यही समता रस है एवं शांत रस है। 'नमो अरिहंताणम्' मन्त्र ज्ञान चेतना के प्रति भक्ति उत्पन्न कर उसमें जीव को तल्लीन बनाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमो मन्त्र अनाहत स्वरूप

'नमो' मंत्र उच्चारण में सरल, अर्थ से रक्षण करने वाला एवं फल से ऊर्ध्वातिऊर्ध्व गति में ले जाने वाला है, अतः महामंत्र है। उच्चारण करते ही यह सब प्राणों को ऊँचे ले जाता है और यह सर्वप्राणों को परमात्मा में विलीन कर देता है। वह शब्द से सरल, अर्थ से मांगलिक एवं गुण से सर्वोच्च है। नम्रता सब गुणों में परम गुण है। अपनी सत्ता को अणु रूप समझने वाला ही महान् से महान् तत्त्व के साथ संबंधित हो सकता है। पूर्णता शून्यता का ही सर्जन है। 'नमो' मंत्र में शून्यता निहित है अतः वह पूर्णता का कारण बनता है। 'नमो' अनाहत स्वरूप है क्योंकि वह भाव प्रधान है। ज्ञान अक्षरात्मक है एवं भाव अनक्षर स्वरूप है। अतः उसका आलेखन अनाहत के द्वारा ही सम्भव हो सकता है फिर ज्ञानोपयोग की स्थिति अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं है। भाव की स्थिति अव्याहत है। दीर्घकालीन होने के कारण उसका आलेखन अथवा आकलन शब्द द्वारा सम्भव नहीं। परमात्मा केवल ज्ञान ग्राह्य नहीं किन्तु भाव ग्राह्य है। भाव स्वरूप तथा भक्ति स्वरूप होने से 'नमो' पद के द्वारा परम तत्त्व की अनुभूति हो सकती है। छद्मस्थ जीवों के लिए जहाँ ज्ञान का अन्त है वहीं भाव का प्रारम्भ है। पृथक्करण करने के कारण जहाँ ज्ञान द्वैत स्वरूप है वहाँ भाव एकीकरण करने के कारण अद्वैत स्वरूप है। इसीलिए परमात्मा के साथ अद्वैत भाव नमस्कार से ही साधा जा सकता है।

रुचि अनुयायी वीर्य

नमस्कार-भाव प्रशंसात्मक तो है ही साथ ही आदर, प्रीति एवं बहुमान वाचक भी है। नमस्कार भाव से परमतत्त्व के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रति अभिरुचि प्रकट होती है। जहाँ रुचि वहीं पराक्रम प्रवृत्त होता है। भाव द्वारा उत्पन्न रुचि में ही सामर्थ्य है कि वह आत्मा की शक्ति एवं वीर्य को परमात्म भाव की ओर मोड़ दे। भाव की उत्पत्ति ज्ञान से होती है पर ज्ञान स्वयं भाव स्वरूप नहीं। भाव में ज्ञान तो है ही पर उससे भाव के कुछ अधिक होने से ही वह पूज्य है। भाव शून्य ज्ञान का मूल्य कोड़ी भी नहीं। अल्पज्ञान से समन्वित शुद्ध भाव का मूल्य अगणित है। परमात्मा चिन्मय ज्ञानानन्दमय है, अतः वह भाव ग्राह्य है। सर्वभावों में श्रेष्ठभाव श्री नमस्कार का भाव है। नमस्कार भाव में नमस्कार्य के प्रति सर्वस्व का दान एवं सर्वस्व का समर्पण होता है जिससे उसका फल अगणित, अचिन्त्य एवं अप्रमेय होता है। सर्वपापों को भेदित करने के लिए वह समर्थ है एवं सर्वमंगलों को आकर्षित करने में वह अमोघ है।

अनाहत भाव का सामर्थ्य

अनाहत के आलेखन में तीन वलय है जो भाव सम्बन्धी माने जाते हैं अर्थात् वे उत्तरोत्तर भाव वृद्धि के सूचक हैं। आगम का सार नमो भाव है। मन्त्र का सार अनाहत है। नमो भाव समता की वृद्धि करता है और यह समता अनाहत है। उसे सूचित (इंगित) करने के लिए तीन वलयों का आलेखन होता है। अनाहत एक प्रकार की ध्वनि भी है जो निर्बाध संचालित होती है यही बताने के लिए उसका चित्रण वर्तुल से न कर कमान से किया जाता है अर्थात् आसक्ति से अनासक्ति एवं व्यष्टि से समष्टि की तरफ जाने के लिए भाव ही समर्थ है। केवल क्रिया या ज्ञान में वह सामर्थ्य नहीं। भाव जब तक विश्वव्यापी नहीं बनता है तब तक आहत होता है जब वह सर्वव्यापी बनता है तब अनाहत होता है। ज्ञान व क्रिया का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फल परिमित है, पर भाव का फल अपरिमित है वह अनाहत का आलेखन करता है। भाव में समर्पण तथा सम्बन्ध है इसीलिए वह पूज्य है। पूज्यता का अवच्छेदक दान है परन्तु ग्रहण नहीं। समताभाव का दान ही सर्वोत्कृष्ट दान है। समता भाव सभी के लिए समान भाव धारण करना होता है। अतः वह अनाहत है।

नमस्कार प्रथम धर्म क्यों

जैनगमों का प्रथम सूत्र श्री पंचमंगल याने नमस्कार सूत्र है। उसका पहला पद 'नमो' है। यह नमस्कार क्रिया के अर्थ में व्याकरण मान्य अव्ययपद है जिसका अर्थ है मैं नमस्कार करता हूं। 'इसीलिए नमो अरिहंताणं' का वाच्यार्थ है "मैं अरिहंत परमात्माओं को नमस्कार करता हूं"। यहाँ नमो पद को प्रथम रखकर बताया गया है कि नमस्कार प्रथम धर्म है। धर्म की ओर प्रयाण करने हेतु नमस्कार ही मूलभूत मौलिक वस्तु है। नमस्कार से शुभ भाव जाग्रत होते हैं, शुभ भाव से कर्मक्षय एवं कार्यक्षय से सकल कल्याण की सिद्धि होती है।

मिथ्याभिनिवेश का परम औषध

जीव का संसार परिभ्रमण अज्ञान के कारण है एवं मिथ्यात्व उसकी पुष्टि करता है। अज्ञानी होते हुए भी मैं समझदार हू, एवं मैं ज्ञानी हूँ ऐसे मिथ्याभिमान का ही दूसरा नाम मिथ्यात्व है। अज्ञानी होते हुए भी ज्ञानी की शरण में नहीं जाना ही मिथ्याभिनिवेश है। इसके कारण अज्ञानता का दोष टलता नहीं, उलटा दृढ़ होता है। नमस्कार मंत्र मिथ्याभिनिवेश का औषध है। नमस्कार में ऐसी स्वीकारोक्ति है कि मैं अज्ञानी हूं। यह स्वीकारोक्ति अज्ञानी की गर्हा करवाती है, ज्ञानी की स्तुति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करवाती है तथा जीवन में सारल्य भाव प्रकटाती है; और सरलता ही मोक्ष मार्ग की प्रथम शर्त है। जैसे बालक अज्ञानी है पर वह माता-पिता के शरण में रहता है तो वह ज्ञानी भी होता है तथा सुखी भी। परन्तु जो बालक अज्ञान के साथ ही हठधर्मिता रखता है तथा ज्ञानी की शरण में जाने को तैयार नहीं होता है, वह ज्यों-ज्यों बड़ा होता है त्यों-त्यों अधिक आपत्तियों में आ गिरता है। इसी प्रकार मोक्षमार्ग में भी अज्ञान क्षम्य है पर उसका अभिनिवेश अक्षम्य है। नमो मन्त्र उस अभिनिवेश को टाल देता है। नमो मन्त्र नम्रता को विकसित करता है। नमो मन्त्र द्वारा की ज्ञानियों की पराधीनता स्वीकृत की जाती है।

नम्रता एवं अधीनता

ज्ञान से अज्ञान टलता है, वह बात सच्ची है फिर भी जब तक अधूरा ज्ञान होता है तब तक उसका भी अहंकार होना सम्भव है। इसीलिए जब तक ज्ञान पूर्ण नहीं हो जाय तब तक नम्रता परमावश्यक है। 'नमो' मन्त्र अपने लघुभाव को सदा टिकाकर रखता है तथा इसी लघुभाव के प्रभाव से एक न एक दिन जीव पूर्ण दशा को प्राप्त कर सकता है। ज्ञान जब तक अपूर्ण है तब तक पूर्ण ज्ञानी की पराधीनता जीव को आगे बढ़ाने में सहायक बन सकती है। ज्ञानी के प्रति नम्रता तथा ज्ञानी की आज्ञा के प्रति पराधीनता प्रत्येक छद्मस्थ का प्रथम धर्म है। जिसको नमस्कार किया जाता है, उसकी उच्चता तथा स्वयं की लघुता का भाव पूर्ण रूप से टिकाकर रखने के लिए योग्य को नमन करने की परम आवश्यकता है। बारम्बार का नमस्कार नम्रता तथा योग्य की पराधीनता को पुष्ट करता है। जिसके प्रति हम नम्र तथा आधीन बनते हैं, वे अपने हित के लिए क्या कहते हैं यह जानने की प्रथम जिज्ञासा जाग्रत होती है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा फिर उसकी हितकारिणी आज्ञा को जीवन में जीवित रखने का बल प्राप्त होता है।

नमस्कार सभी धर्मों का मूल

जो बालक अपने गुरुजनों के प्रति नम्र तथा पराधीन वृत्ति वाला होता है वही उनके आदेशों का अनुसरण कर अपने विकास को साध सकता है। अतः नमस्कार विकास का परम साधन है। बचपन से ही बालक को माता-पिता को प्रणामादि करना सिखाया हो तो उससे उसके मन पर उनके प्रति सम्मान का भाव टिका रहता है। इसी प्रकार लोक या परलोक में नमस्कार ही प्रथम धर्म है। हम जब तक पूर्ण ज्ञानी नहीं बनते हैं तब तक पूर्ण ज्ञानियों को, उनके स्वरूप को तथा उनके उपदेश को समझने वाले अधिक ज्ञानी, गुरु आदि के आश्रय में रहना ही चाहिए और इस हेतु नमस्कार का बार-बार आश्रय लेना ही पड़ता है। बार-बार का किया हुआ नमस्कार मन पर देव-गुरु की अधीनता तथा आश्रितता का भाव सदा जाग्रत रखता है तथा उनके हितोपदेश के प्रति आदर-बहुमान का भाव टिका के रखता है। इसीलिए नमस्कार को सबसे प्रथम धर्म कहा जाता है तथा दूसरे सभी धर्मों का मूल भी है ऐसा स्पष्टरूप से समझा जा सकता है।

मन्त्र के अनेक अर्थ

नमस्कार मन्त्र है। मन्त्र के अनेक अर्थ हैं। मन्त्र का अर्थ है गुप्त भाषण। मन्त्र का अर्थ है आमन्त्रण, जिसे प्रणाम किया जा रहा है उसे हृदय प्रदेश में पदार्पण करने हेतु आमन्त्रण। मन्त्र का अर्थ है मन का रक्षण। मन्त्र के वर्णों से मनका संकल्प विकल्प से रक्षण होता है। मन्त्र का अर्थ है विशिष्ट मनन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा उससे होने वाला जीव का रक्षण। विशिष्ट मनन सम्पर्क-ज्ञान का साधन बनता है तथा वह सम्पर्क-ज्ञान शुभ भाव जगाकर आत्मा का रक्षण करता है, योग्य मार्ग पर आरूढ़ करता है। सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चरित्र में रहना ही योग्य मार्ग है एवं मिथ्या ज्ञान-दर्शन-चारित्र में रहना अयोग्य मार्ग है। मंत्र मिथ्या रत्नत्रयी में से जीव को छुड़ाकर सम्यक् रत्नत्रयी की ओर ले जाता है अतः मनन के द्वारा रक्षण करवाने वाला है यह सिद्ध होता है।

अक्षय फल देने वाला दान

नमो मंत्र द्वारा श्री पंचपरमेष्ठि भगवान् को समर्पित सम्मान के दान के बदले में बड़ा से बड़ा दान मिलता है तथा वह दान है स्वयं की शाश्वत आत्मा का ज्ञान होना। स्वयं की शाश्वत आत्मा का अनादिकाल से हुआ विस्मरण ही अनन्त दुःख का मूल है तथा उसका स्मरण ही अनन्त सुख का मूल है। श्री पंचपरमेष्ठि का स्मरण नमस्कार द्वारा स्वयं की शाश्वत आत्मा का ज्ञान करवाकर अनन्तकाल तक नहीं घटे वैसा अक्षय ज्ञान दान करवाता है। जो सदैव देने वाले ही हैं पर कभी लेने वाले नहीं उनको समर्पित किया जाने वाला दान ही एक ऐसा दान है कि जिसका फल अक्षय होता है। श्री पंचपरमेष्ठि भगवान् सम्मान लेने की इच्छा से सर्वथा रहित हैं तथा जीवों को सर्वस्वदान करने हेतु ही जिनका संसार में अस्तित्त्व है उनको नमस्कार द्वारा जब हृदय से सम्मान का दान किया जाता है तब उसका फल अपरिमित होता है।

पूज्य श्री आनन्दघनजी महाराज ने कहा हैः—

अहो अहो हुं मुजने नमुं, नमो मुज नमो मुजरे,
अमित फल दान दातारनी, जेहने भेट थई तुज रे।
शान्ति जिन एक मुज विनति ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहो मैं मुझको नमूँ नमस्कार मुझे,
मुझे नमस्कार है
वह तू ही है
जिसे अमित फल दान दाता की
भेंट हुई है:
शान्ति जिन यही
मेरी पुकार है ॥ भावानुवाद

फिर अन्यत्र भी कहा है कि:—

नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं, नमस्तुभ्यं नमो नमः ।
नमो मह्यं नमो मह्यं, मह्यमेव नमो नमः ॥

अर्थात् परमात्मा को किया हुआ नमस्कार ही स्वयं की आत्मा को नमस्कार है तथा स्वयं की शुद्ध आत्मा को किया हुआ नमस्कार ही परमात्मा को नमस्कार है।

नमो द्वारा सर्व समर्पण

नमो आत्मनिवेदन रूप भक्ति का एक प्रकार है। नमो द्वारा नमस्कार करने वाला परमात्मा के आगे "मैं तुम्हारा ही अंश हूँ, सेवक हूँ, दास हूँ", ऐसा स्वात्मनिवेदन करता है। नमो द्वारा प्रभु का एवं प्रभु के नामादि का श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण होता है, प्रभु के रूप को वन्दन, अर्चन एवं पूजन होता है। वैसे ही प्रभु के समक्ष यह आत्मनिवेदन होता है कि मैं प्रभु का दास हूँ, सेवक हूँ एवं अंश हूँ। नमो द्वारा परमात्मा के साथ भक्ति का तात्त्विक सम्बन्ध स्थापित होता है नमो पर-ब्रह्म के साथ योग्य सम्बन्ध स्थापित करवाने वाला महा मंत्र है एवं वह आत्मनिवेदन पूर्वक स्वशरणागति को सूचित करता है। अहम्मन्यता, ममता, आदि-पाप हैं जिनका मूल अज्ञानता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। अज्ञान सहित सब पापों को नष्ट करने की शक्ति नमस्कार में है, क्योंकि नमस्कार में आत्म-समर्पण होता है। समर्पण का अर्थ अनात्म पदार्थों में आत्मबुद्धि का विसर्जन तथा आत्मभाव में आत्मा का निमज्जन है। उस निमज्जन का दूसरा नाम शरणागति है। नमो मन्त्र परमतत्त्व को समर्पण होने की क्रिया है। शरणागति को नवधा भक्ति के ऊपर दशम भक्ति कहा जाता है। इस भक्ति का आश्रय लेने वाले को वचन है कि "न मे भक्तः प्रणश्यति" मेरे भक्त का कभी नाश नहीं है अर्थात् वह मेरी दृष्टि से दूर नहीं होता है।

अहम्मन्यता तथा ममता से उद्भूत पाप ही बड़े से बड़ा पाप है। आत्मनिवेदन तथा शरणागति से उन पापों का अन्त होता है। इन दोनों पापों का मूल ब्रह्म सम्बन्ध का अज्ञान है। नमस्कार से सच्चा ब्रह्म सम्बन्ध साधित होता है जिससे अज्ञान, पाप एवं उसके विविध विपाक का सदा के लिए अन्त होता है।

नमो से होती भक्ति एवं पूजा की क्रियाएँ

नमो द्वारा मैं परमात्मा का स्मरण करता हूँ, कीर्तन करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदन करता हूँ, प्रीति करता हूँ, भक्ति करता हूं, आज्ञा को शिरोधार्य करता हूँ तथा असंग भाव से उनके साथ मिल जाता हूँ। स्मरण कीर्तनादि द्रव्य-संकोच रूप है वैसे ही आज्ञापालन तथा शरण गति भाव संकोच रूप है। नमो में दोनों प्रकार के संकोच का अनुभव होता और केवल आत्मतत्त्व का विकास वांछित होता है।

नमो प्रीतिरूप है, भक्तिरूप है, वचनरूप है तथा असंगरूप है। नमो इच्छारूप है, प्रवृत्तिरूप है स्थैर्यरूप है तथा सिद्धिरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी है। नमो में भक्ति के सर्व प्रकार अन्तर्भत हो जाते हैं। द्रव्यपूजा तथा भावपूजा के सभी प्रकार नमो मन्त्र में समा जाते हैं।

सभी अवस्थाओं में कर्त्तव्य

श्री अरिहंत को नमस्कार, श्री सिद्ध को नमस्कार, श्री आचार्य को नमस्कार, श्री उपाध्याय को नमस्कार तथा सर्व-साधुओं को नमस्कार आदि आत्मा की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को ही नमस्कार है। श्री आचार्य, श्री उपाध्याय तथा श्री साधु को नमस्कार छठे गुणास्थानक से बारहवें-तेरहवें गुणस्थानक तक की अवस्था को नमन है। श्री अरिहंत को नमस्कार प्रमुखतः (मुख्यत) तेरहवें गुणस्थानक को नमन है एवं सिद्ध को नमस्कार मुख्यतः चौदहवें गुणस्थान को नमस्कार है। तत्त्व से उन-उन अवस्थाओं में आत्मा का भाव से परिणामन होता है। स्वयं आत्मा का उन-उन विशुद्ध अवस्थाओं में परिणामन बाह्य भावों के साथ की अहम्मन्यता तथा ममता के भाव का नाश करता है तथा आन्तरिक भावों के साथ की अहम्मन्यता तथा ममता के भावों को पैदा करता है। वस्तुतः यह नमस्कार अहम्मन्यता व ममता का नाशक तथा निर्ममता, निरहम्मन्यता तथा समता का उत्पादक है। ममता समाधि-स्वरूप है तथा बाह्य विषयों की ममता संकलेश स्वरूप है। संकलेश को टाल समाधि को साधने वाला नमस्कार सर्वावस्थाओं में करणीय है। प्रथम गुणस्थान में किया हुआ नमस्कार मिथ्यात्व का नाश करता है, चौथे गुणस्थानक में कृत नमस्कार अविरति का नाश करता है तथा छठे गुणस्थानक में किया हुआ नमस्कार प्रमाद का नाशक होता है। ऊपर के गुणस्थानकों में सम्भूत नमस्कार स्वभाव परिणामन रूप बन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंग भाव लाता है। कहा है कि—

जेह ध्यान अरिहंत को, तेहीज आतम ध्यान।
फेर कछु इणमें नहिं एहिज परम निधान॥

ज्ञान ध्यान एवं समता

प्रत्येक पर्याय में द्रव्य अनुस्यूत है, द्रव्य में गुण की प्रधानता है तथा गुण में ज्ञान की प्रधानता है। आनन्द ज्ञान से भी श्रेष्ठ है। द्रव्य सामान्य वृद्धिकारक है, गुण सामान्य एकत्वकारक है तथा पर्याय सामान्य तुल्यताकारक है। इस प्रकार द्रव्य गुण पर्याय से परमात्म का ध्यान ही आत्मा का ध्यान है। इस प्रकार होता आत्म-ध्यान वृद्धिकारक, एकत्वकारक तथा तुल्यताकारक होने से अनन्त समता को अर्पित करने वाला है। समता-समभाव-समानबुद्धि आदि एकार्थक है। मोक्ष का अनन्तर कारण समता है। समता को मोक्ष का भाव-लिंग भी कहा गया है। वही समता आत्म ध्यान से प्राप्त होती है।

न साम्ये विना ध्यानं, न ध्यानेन विना च तत्
निष्कम्पं जायते तस्मात्, द्वयमन्योन्यकारणम्।

अर्थात् समता के बिना आत्मध्यान तथा आत्मध्यान के बिना निष्कम्प समत्व नहीं। अर्थात् ध्यान के बिना समता भाव में निश्चलता प्राप्त नहीं होती है। अतः ध्यान का कारण समता तथा समता का कारण ध्यान है।

इस प्रकार ध्यान और समता परस्पर कार्यकारण-भाव को प्राप्त कर वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

वृद्धि एकता एवं तुल्यता

द्रव्य से होने वाला आत्मध्यान वृद्धिकर होता है। अर्थात् शुभ भाव की वृद्धि करता है, गुण से होने वाला ध्यान भाव से एकत्व स्थापित करता है तथा पदार्थ से होता ध्यान भाव के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समान ही है। तुल्यता एकता तथा वृद्धि जब एक साथ मिलती है तब समता स्थिर होती है। स्थिर समता अनन्त द्रव्यों की समानता, गुणों की एकता और पर्यायों की तुल्यता के ज्ञान के ऊपर अवलम्बित है, उससे समता के इच्छुक जीवों को परमेष्ठि नमस्कार द्वारा अनुक्रमशः द्रव्य से वृद्धि, गुण से एकता और पर्याय से तुल्यता के ध्यान का अनुभव करना चाहिये। जब ध्यान में परमेष्ठियों के शुद्ध आत्म-द्रव्य के साथ स्वयं का आत्म-द्रव्य मिलता है तब वृद्धि का अनुभव होता है। उनके गुणों के साथ जब स्वयं के गुण मिलते हैं तब एकता का अनुभव सम्भव है। इस प्रकार तुल्यता, एकता और वृद्धि का अनुभव विषमता का नाश करता है और समता का प्रादुर्भाव करता है। इस परमेष्ठि नमस्कार में नित्य एकता होने का अभ्यास क्रमशः प्रकर्ष को प्राप्त कर ध्यान को ध्येय रूप बनाने वाला होता है। आत्मा परमात्मस्वरूप होता है तथा व्यष्टि स्वयं समष्टि रूप धारण कर अन्य में परमेष्ठि स्वरूप बन जाता है। कहा है कि—

निज स्वरूप उपयोग थी, फिरी चलित जो थाय;
तो अरिहंत परमातमा, सिद्ध प्रभु सुख दाय ॥१॥
तिनका आत्म सरूपका, अवलोकन करो सार;
द्रव्य गुण पज्जव तेहना, चिन्तवो चित्त मझार ॥२॥
निर्मल गुण चिन्तन करत निर्मल होय उपयोग;
तब फिरी निज स्वरूप का ध्यान करो थिर जोग ॥३॥
जे सरूप अरिहंत को, सिद्ध सरूप वली जेह;
तेहवो आतम रूप छे, तिणमें नहिं संदेह ॥४॥
चेतन द्रव्य साधर्म्यता, तेणे करी एक सरूप;
भेदभाव इण में नहीं, एहवो चेतन रूप ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिन्मात्र समाधि का अनुभव

आत्मध्यान का फल समता है एवं समता का फल निर्विकल्प उपयोग अर्थात् निर्विकल्प समाधि है। उस समाधि को निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि कहते हैं। उसमें राग-द्वेष तथा सुख-दुःख से परे एक ऐसा चिन्मात्र उपयोग रहता है जिसे शास्त्रों में ज्ञान चेतना के रूप में पहिचाना जाता है, वह ज्ञान-चेतना वीतराग एवं सर्वज्ञ है। इससे उसमें केवल निरुपाधिक सुख का ही अनुभव होता है। उस सुख में द्वन्द्व नहीं। अतः वह द्वन्द्वातीत भी कहा जाता है। नमस्कार महामंत्र के प्रथम पद में ही इस निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि को अनुभव करने का एक अनोखा प्रयोग है। गुरु मुख से नमस्कार मंत्र की प्राप्ति होते ही नमो द्वारा देव तत्त्व के सम्मुख हुआ जाता है क्योंकि नमो पद के साथ ही अरिहं शब्द जुड़ा हुआ है जो देव तत्त्व का वाचक है। जीवात्मा का दल परमात्मा है उस परमात्म-तत्त्व का अनुभव करने के लिए ताणं शब्द जोड़ा गया है। यह ताणं शब्द त्राण अर्थ में है एवं वह त्राण आज्ञा शब्द के साथ सम्बन्ध रखता है। जहाँ एवं जब अरिहंतों की आज्ञा का पालन मुख्य बनता है वहाँ एवं तब मन, प्राण एवं आत्मा परमात्मा में एकाकार होते हैं। इस प्रकार 'नमो अरिहंताणं' मंत्र क्रमशः गुरु, मंत्र, देवता, आत्मा, मन एवं प्राण की एकता करवाकर अन्तरात्मभाव जाग्रत करता है तथा अन्तरात्म भाव में स्थिर कर परमात्म-भाव की भावना करवाता है। यह भावना अन्त में परमात्म-भाव प्रकट कर अव्याबाध सुख का भोक्ता बनाती है।

नमो पद में निहित अमृत क्रिया

नमो शब्द विस्मय, पुलक एवं प्रमोदस्वरूप है। भव-भय का सूचक भी नमो पद उत्तरोत्तर भाव वृद्धि को सूचित करने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाला भी है। उसका परिणाम तद्गतचित्त में आता है। अर्थात् चित्त में एकाग्रता लाने हेतु भी नमो पद परम साधन बनता है। भव का सच्चा भय तो तभी गिना जाता है जब तन्द्रित मनुष्य को यों लगे कि मेरा घर जल रहा है एवं वह एकदम हक्का बक्का होकर उठे उस समय उसे जैसा भय लगता है वैसा भय संसार रूपी दावानल में से मुक्त होने हेतु जब उत्पन्न हो जाय तब उसमें सच्चा भव-भय उत्पन्न हुआ गिना जाय। खुद का घर जल रहा हो और मनुष्य हक्का बक्का होकर उठे वैसे ही मोहनिद्रा में सोया हुआ जीव कर्म दावानल के दाह में से उबरने हेतु धर्मजागृति का अनुभव करे। वह सच्चा भव-भय है। यह नमो पद नमस्कर्ता के अन्तर में जागे हुए भव-भय का सूचक है। जहां भय होता है वहाँ प्रतिपक्षी वस्तु पर भाव या प्रेम उत्पन्न होता है। उसी प्रकार भव से भय प्राप्त जीव को आत्मतत्त्व पर प्रेम होता है एवं उस प्रेम का सूचक भी नमो पद होता है। सच्चा प्रेम प्रिय वस्तु को ध्यान में लाता ही है और उसे साधने हेतु विधिविधान में सावधान बनाता ही है। नमो पद के साथ वह सावधानी एवं एकाग्रता भी संयुक्त ही है। इसीलिए यह नमो सावधानी एवं तन्मयता का भी प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार अमृत क्रिया को सूचित करने वाले जितने लक्षण शास्त्र में कहे गए हैं वे सब नमो पद के आराधक में आने वाले हैं और तभी नमो पद सार्थक बनता है।

अमृत क्रिया के लक्षण

तद्गत चित्तने समयविधान,
भावनी वृद्धि भव भय अति घणो,
विस्मय पुलक प्रमोद प्रधान,
लक्षण ऐ छे अमृत क्रिया तणों।

उपा० श्री यशोविजयजी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विस्मय पुलक एवं प्रमोद सद्‌वस्तु की प्राप्ति के हर्षातिरेक को सूचित करते हैं। अवभ्रमण का भय ही हर्षातिरेक को उत्पन्न करने वाला है। भव भ्रमण का भय जितना तीव्र होगा उतनी ही भाव की वृद्धि अधिक होगी एवं भाव की वृद्धि जितनी अधिक उतनी ही आराधना में सावधानी एवं एकाग्रता अधिक। इस प्रकार अमृत क्रिया के सभी लक्षण नमो पद की आराधना में घटित होते हैं। नमो पद का आराधक नमस्कार को विधि सम्हालने में सावधान इसलिए होता है कि उसके हृदय में भव का भय है। इससे धर्म एवं धर्म सामग्री पर वह प्रेम धारण करता है एवं यह प्रेम विस्मय, पुलक एवं प्रमोद में अभिव्यक्त होता है।

समयविधान शब्द के दो अर्थ निकलते हैं समय का अर्थ है जिस समय जो काम करने को कहा गया है उस समय वही करना—"काले कालं समाचरेत्।" योग्य काल को संयोजित करना यह प्रथम अर्थ है। समय का दूसरा अर्थ सिद्धान्त है। सिद्धान्त में कहे हुए विधि-विधानानुसार धर्मानुष्ठान का आचरण करना ही समयविधान है। विधि-विधान में स्थान मुद्रा आदि जिस प्रकार संयोजित करने के लिए कहा हो उसी प्रकार संयोजित कर क्रिया करना। इस प्रकार काल, देश, मुद्रा आदि का संयोजन करना समय विधान है। भाव की वृद्धि चित्त की एकाग्रता आदि है। अर्थ का आलोचन गुणों के प्रति राग एवं एकाग्रता लाने के साधन हैं।

नमो मंत्र की अर्थ भावना

अर्थ भावना से युक्त मंत्रजाप विशिष्ट फलदायक होता है। नमस्कार महामंत्र की अर्थ भावना अनेक प्रकार से विचारी जा सकती है। नमो पद पूजा के अर्थ में है एवं पूजा द्रव्य भाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकोच के अर्थ में है। द्रव्य संकोच शरीर संबंधी है एव भाव संकोच मन संबंधी है। अहंत्व ममत्व के संकोच में भी संकोच शब्द का प्रयोग हो सकता है। शरीर में अहंत्व की बुद्धि का एवं मन-वचनादि में ममत्व की बुद्धि का संकोच अर्थात् अहंत्व-ममत्व के विसर्जनपूर्वक श्री अरिहंतादि परमेष्ठियों को नमस्कार ही निश्चय रूप से आत्मतत्त्व को ही नमस्कार है। चैतन्य स्वरूप में स्वयं का, पर का एवं परमात्मा का आत्मतत्त्व एक ही है। इस प्रकार "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" की भावना भी श्री नमस्कार मंत्र का ही अर्थ है। तत्त्वमसि। प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म। अयमात्मा ब्रह्म। अहं ब्रह्मास्मि। सर्वं खल्विदं ब्रह्म। इत्यादि वेद के सभी महावाक्यों की भावना श्री नमस्कार मंत्र के अर्थ में उपर्युक्त प्रकार से सापेक्ष भाव से सिद्ध हो सकती है।

श्री नमस्कार मन्त्र में पुण्यानुबंधी पुण्य

श्री नमस्कार मंत्र दुष्कृत का क्षय करता है, सुकृत (पुण्य) को पैदा करता है एवं आत्मा का शुद्ध स्वरूप के साथ अनुसंधान कर देता है। संसारी आत्मा पापरुचि के कारण संसार में परिभ्रमण करती है। श्री नमस्कार मंत्र पाप-रुचि ढालता है, एवं धर्म-रुचि प्रकट करता है। पापरुचि ढलने से परपीडा-परिहार की वृत्ति जागती है एवं धर्मरुचि प्रकट होने से परानुग्रह का परिणाम उत्पन्न होता है तथा वे दोनों होने से चित्त निर्मल होता है। निर्मल चित्त में आत्म-ज्ञान आविर्भूत होता है। आत्म-ज्ञान अनादि कालीन अज्ञान एवं मोह का नाश कर शुद्ध स्वरूप की अनुभूति करवाता है। शुद्धात्मा की अनुभूति सकल कर्म के क्षय का कारण बन अव्याबाध पद की प्राप्ति करवाती है।

पुण्यानुबंधी पुण्य के स्वरूप को बताते हुए शास्त्रों में कहा गया है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दया भूतेषु वैराग्यं; विधिवत् गुरुपूजनम् ।
विशुद्धा शीलवृतिश्च, पुण्यं पुण्यानुबन्ध्यदः ।
परोपतापविरतिः परानुग्रह एव च ।
स्वचित्तदमनं चैव, पुण्यं पुण्यानुबन्ध्यदः ।

भावार्थ—श्री नमस्कार मंत्र में पुण्यानुबन्धी पुण्य की प्राप्ति का उपर्युक्त समस्त उपायों का संग्रह है क्योंकि श्री नमस्कार मंत्र से भूतदया का परिणाम जागता है, संसार के सुखों के प्रति उदासीनता का भाव जागता है, देव गुरु की विधिवत् एकाग्रचित्त से उपासना होती है, दया-दान-परोपकार-सदाचार आदि का पालन करने की शीलवृत्ति जागती है, पर पीडा से निवृत होने की एवं दूसरे को सहायरूप बनने की वृति उत्पन्न होती है, चित्तवृति की अशुद्धि का क्षय होता है एवं विशुद्ध चित्त की उत्पत्ति होती है। साथ ही विशुद्ध चित्त में आत्मज्ञान का प्रतिबिम्ब पड़ता है एवं आत्म ज्ञान मोह क्षय कारण बन मोक्षसुख प्रदान करवाता है।

इन सभी लाभों का मूल श्री नमस्कार मन्त्र की आराधना ही है। अतः श्री नमस्कार महामन्त्र की आराधना को शास्त्रों में शिवसुख का अद्वितीय कारण माना है।

नमस्कार शास्त्रों का महान् आदेश

अज्ञान एवं अहम्मन्यता के आग्रह को मिटाने हेतु नमस्कार अनिवार्य है। नमस्कार का अर्थ है देव गुरु की आधीनता का स्वीकार। देव गुरु को नमस्कार करना शास्त्रों का महान् आदेश है। शास्त्रों के इस आदेश को समझने हेतु बुद्धि की आवश्यकता है। जिसमें स्वयं प्रज्ञा नहीं होती है, शास्त्र उसका क्या लाभ कर सकते हैं। यहाँ प्रज्ञा का अर्थ है सद्बुद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह है कि जो शास्त्र वचन पर श्रद्धा पैदा करने में एवं उस पर श्रद्धा के बाद उसे जीवन में उतारने हेतु सहायक बने। शास्त्र वचन को समझने हेतु जो प्रज्ञा आवश्यक है, उस प्रज्ञा का उपयोग अवश्य करना चाहिये। उससे विपरीत प्रज्ञा का अर्थात् कुतर्क का नहीं। प्रज्ञा से शास्त्र के वचन एवं उसका परमार्थ समझना सरल होता है, साथ ही उत्सर्ग-अपवाद व्यवहार निश्चया-ज्ञान-क्रिया इत्यादि के उपयोग की सच्ची दिशा समझी जाती है। सद्बुद्धि रूपी प्रज्ञा की सहायता से ही शास्त्र वचन का दुरुपयोग नहीं होता एवं सदुपयोग होता है। उससे शास्त्र वचनों की सापेक्षता समझी जाती है एवं प्रत्येक अपेक्षा का योग्य उपयोग कर जीव की क्रमिक आत्मोन्नति साधी जा सकती है। शास्त्रों का आदि वाक्य परमेष्ठि को नमस्कार है एवं उसका भी आदि पद नमो है। वे शास्त्राधीनता सूचित करते हैं। शास्त्रों के आदि प्रकाशक देव एवं गुरु की पराधीनता ही आत्मा की स्वाधीनता प्राप्त करने का एकमात्र राजमार्ग है यह नमो पद समझाता है।

शुद्ध चिद्रूप रत्न

ज्ञेयं दृश्यं नगम्यं मम जगति, किमप्यस्ति कार्यं न वाच्यं,
ध्येयं श्रेयं न लभ्यं न च विशदमते, श्रेयमादेयमन्यत्।
श्री मत्सर्वज्ञ-वाणी-जल-निधि-मथनात्, शुद्धचिद्रूपरत्नं।
यस्मात्, लब्धं मयाऽहो कथमपि विधिनाऽप्राप्तपूर्वं प्रियं च॥

भावार्थ श्री सर्वज्ञ भगवान् की वाणीरूपी महासागर के मंथन करने से शुद्ध चिद्रूप रत्न को मैंने महा भाग्य के योग से महा प्रयत्न से प्राप्त किया है। कि जो पूर्व में कभी भी प्राप्त नहीं हुआ था एवं जो आनन्द से भरपूर है। जिसे प्राप्त करने के पश्चात् अब मुझे दूसरा कुछ भी जानने योग्य, दर्शन योग्य,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खोजने योग्य, करने योग्य, कहने योग्य, ध्यान करने योग्य अथवा श्रेय रूप में ग्रहण करने योग्य है ही नहीं, यही वास्तव में आश्चर्य है।

श्री सर्वज्ञ भगवान् की वाणी ने जिसकी महिमा गायी है, जो वस्तु जानने योग्य, देखने योग्य, प्राप्त करने योग्य, बोलने योग्य, करने योग्य, ध्यान करने योग्य, सुनने योग्य, आदर योग्य एवं प्रीतियोग्य है वह केवल शुद्ध चिद्रूप रत्न ही है। ज्ञान चेतना के स्थिर होने से मिलने वाला श्रेय परमानन्द है, अतः उसकी प्राप्ति के लिए ही सब प्रकार के प्रत्यन करने चाहिये, उसकी प्राप्ति से ही कृत कृत्यता का अनुभव करना चाहिये। यही शुद्ध चिद्रूप रत्न नमस्कार मन्त्र का ज्ञेय एवं ध्येय है, श्री पंच परमेष्ठि भगवान् इस शुद्ध चिद्रूप रत्न को प्राप्त कर चुके हैं। अतः वे श्रीमान् बार-बार नमनीय हैं, पूजनीय हैं, सेवनीय हैं, आदरणीय हैं एवं सब प्रकार से सम्माननीय जीव हैं। श्री नमस्कार मन्त्र के स्मरण से, जाप से, श्री पंच परमेष्ठि भगवान् में निहित शुद्ध चिद्रूप रत्न का ही स्मरण, जाप एवं ध्यान होता है, उसके द्वारा अपने शुद्ध चिद्रूप आत्मरत्न में ही तन्मयता होने से उनका ध्यान परम आलम्बन रूप है, यही श्री नमस्कार द्वीप है, दीप है, त्राण है, शरण है, गति है एवं प्रतिष्ठान है। उन सबका एक ही अर्थ है कि त्रिकाल में एवं त्रिलोक में शुद्ध चिद्रूप रत्न यही है, द्वीप, दीप, त्राण, शरण, गति एवं परम प्रतिष्ठान है। उसमें त्रिकरण योग से लीन होना ही परम पुरुषार्थ है। उससे रागद्वेषादि भावों का विसर्जन होता है एवं ज्ञानादि भावों का सेवन होता है, साथ ही सांयोगिक भाव से पर बनकर असांयोगिक आत्मभावों में स्थिर हुआ जाता है। शुद्ध चिद्रूप आत्मरत्न ही एक मात्र ध्येय है, ऐसी श्रद्धा सुदृढ बनती है, जिसको सुदृढ बनाने का परम उपाय श्री पंच परमेष्ठि नमस्कार है। इसी से श्रुत केवली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भवगान् भी आपत्ति के समय केवल उसी का आश्रय लेते हैं। शुद्ध चिद्रूप रत्न की वह मंजूषा है उसका भार अल्प है एवं मूल्य अधिक है। अतः उस रत्न मंजूषा को वे सदा साथ रखते हैं। उससे अज्ञान, दारिद्र एवं मिथ्यत्वा कोट सदा के लिए विचूर्णित हो जाता है। पुनः दुःख दुर्भाग्य आदि का भी स्पर्श नहीं हो सकता है। दुःख दुर्गति से विचलित लोगों को हमेशा सुख सौभाग्य को अर्पित करने वाला रत्न पिटक श्री नमस्कार मन्त्र है। उसमें सबसे अधिक मूल्यवान शुद्ध चिद्रूप रत्न निहित होने से सम्यक् ज्ञानी एवं सम्यक् दृष्टि जीव उसे अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा मानते हैं। उसके मिलने के पश्चात् दुःख दुर्गति नष्ट होने का परम सन्तोष, परम धृति का अनुभव होता है। सर्वज्ञवाणी के मंथन से प्राप्त श्री नमस्कार मन्त्र की श्रद्धा परम धृति को प्रदान करती है, यह धृति धारणा को प्रकट करती है, ध्यान को स्थिर करती है एवं चित्र समाधि के परम सुख का अनुभव कराती है।

ज्ञानादि से एकता एवं रागादि से भिन्नता

श्री नमस्कार मन्त्र द्वारा ज्ञानादि से एकता एवं रागादि से भिन्नता का अनुभव होता है, जिससे उपयोग में एकतारूप ज्ञान एवं रागादि से भिन्नतारूप वैराग्य युक्त शुद्धात्मा का अनुभव होता है। उस अनुभव में रागादि से भेद का ज्ञान ही संवर है एवं ज्ञानादि से भेद का ज्ञान पूर्व कर्म का निजरा करवाता है। इस प्रकार नमस्कार मन्त्र संवर-निर्जरा की दशा प्राप्त करवाने वाला होने से उसमें तन्मयता परमानन्द रूपी मोक्ष का परम उपाय है। ऐसा सम्यक् दर्शन होते ही आत्मा में आनन्द की अनुभूति एवं संवर निर्जरा का प्राप्ति का आरम्भ हो जाता है। ज्ञान चेतना रागादि से भिन्न है। जिस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कमल कीचड़ के मध्य भी निर्लिप्त है सुवर्ण जंगरहित है जीभ चिकनाहट से भी चिकनी नहीं होती, अथवा मन्त्र के वर्ण जैसे विषापहार करते हैं वैसे ही रागादि से भिन्न ज्ञान चेतना कर्म-फल के आस्वादन का विष हरण कर लेती है एवं जीभ, सुवर्ण एवं कमल के सदृश रागादि के लेप से रहित रहती है। ऐसा भेदाभेदा अथवा एकत्व पृथकत्व विज्ञान संवर-निर्जरारूप होने से वीतरागिता एवं सर्वज्ञता का बीज है। जिसका वचन श्री नमस्कार मन्त्र को होता है क्योंकि उसमें केवल ज्ञान चेतना को नमस्कार है, ज्ञान चेतना का बहुमान है तथा है ज्ञान चेतना की उपादेयता का पुनः पुनः भावन। नमस्कार सम्यक् दृष्टि जीवों का प्राण है। श्री नमस्कार मन्त्र से ज्ञान शक्ति एवं वैराग्य शक्ति दृढ़ एवं स्थिर होती है। ज्ञान का अर्थ है शुद्ध चिद्रूप स्वरूप का अनुभव एवं वैराग्य का अर्थ है परद्रव्य परभावों से भिन्नता की अनुभूति। इस अनुभूति का झुकाव शुद्ध स्वरूप की तरफ होने से द्रव्य कर्म, भाव कर्म एवं नो कर्म (इषत् कर्म) कर्म की तरफ उदासीन भाव सेवित होता है जिससे अशुद्ध परिणति दिन प्रतिदिन घटती जाती है एवं शुद्धता बढ़ती जाती है उसी का नाम निर्जरा तत्त्व है। ज्ञान वैराग्य सम्पन्न सम्यक् दृष्टि जीव वीतराग एवं सर्वज्ञ का ही उपासक होता है। श्री नमस्कार मन्त्र में वीतराग सर्वज्ञ तत्त्व की उपासना होती है। निर्ग्रन्थता वीतरागिता का बीज है एवं ज्ञान चेतना के साथ एकत्व ही सर्वज्ञता का बीज है। ग्रन्थ राग का नाम है। उससे अपने स्वरूप के भेद को जो जानते हैं एवं तदनुसार जीवन जीते हैं वे निर्ग्रन्थ हैं। जो जानते हुए भी वैसा जीवन जी नहीं सकते वे अविरति सम्यक् दृष्टि है, एवं जो थोड़ा-थोड़ा जीते हैं वे देशविरति सम्यक् दृष्टि हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःख भावित ज्ञान

अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः॥

भावार्थ—दुःखरहित अवस्था में भावित आत्मज्ञान दुःख की अवस्था में नष्ट हो जाता है। अतः यथाशक्ति कष्ट सहन करते हुए आत्मज्ञान की भावना करनी चाहिये।

मरणान्त कष्ट के समय भी श्री परमेष्ठि नमस्कार समाधि में सहायक होता है। उसका कारण है उसमें रागादि से भिन्न वीतराग एवं ज्ञानादि से अभिन्न सर्वज्ञ तत्त्व का चिन्तन-भावन होता है। शुद्ध स्वरूप का यथार्थ भावन होने से प्रतिकूल समय में भी वह ज्ञान विद्यमान रहता है एवं आनन्द इसकी अनुभूति करवाता है। अनुकूल समय तीनों कालों में एवं प्रतिकूल समय में बार-बार श्री नमस्कार मन्त्र को भावित करने का आदेश है, तत्पश्चात् आत्मज्ञान को दुःख में एवं सुख में भी भावित कर स्थिरतर करने का आशय है।

सत्संग से निस्तरंग अवस्था का कारण

जीव परिणामी स्वभाव वाला है। जब वह शुभाशुभ परिणाम में परिणमित होता है तब वह शुभाशुभ होता है एवं जब शुद्ध परिणाम में परिणमित होता है तब वह शुद्ध होता है। श्री नमस्कार मन्त्र जीवन को शुभाशुभ परिणाम में परिणमित होने से रोक शुद्ध परिणाम में परिणमित करता है। अतः नमस्कार का एक अर्थ शुद्ध स्वभाव में परिणमन भी है। नमन का अर्थ है परिणमन। श्री अरिहंतादि परमेष्ठिओं के शुद्धस्वरूप के आलम्बन से अपनी आत्मा का शुद्ध परिणमन कारक होने से श्री नवकार मन्त्र जीव को मुक्ति प्रदान करने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाला है। नवकार शुद्धात्म परिणमन रूप है। श्री नवकार मन्त्र को जानने से आत्मा रागादि भाव एवं परसंग से मुक्त होती है जो सच्ची मुक्ति है।

शुद्धोपयोग में स्थित श्री अरिहंत, श्री सिद्ध आदि परमेष्ठि आत्मा से ही उत्पन्न विषयातीत, निरुपम एवं अनन्त विच्छेद-रहित सुख का अनुभव करते हैं। उस स्वरूप का ध्यान धर्मध्यान के क्रम से शुक्ल ध्यान का कारण बन कर्मरूपी ईंधन के समूह को शीघ्र भस्मीभूत करता है। हृदय में आत्मस्वभाव की लब्धि प्रकाशमान होने के साथ ही शुभाशुभ के कारण भूत संकल्प-विकल्प शान्त हो जाते हैं। जो केवल ज्ञान-स्वभावी है, केवल दर्शन-स्वभावी है, केवल सुखमय है एवं केवल वीर्य-स्वभावी है, वही आत्मा है ऐसा ज्ञानी पुरुष सोचते हैं। जिस ध्यान में ज्ञान से आत्मा प्रतिभासित नहीं होती है, वह ध्यान नहीं है। जो ज्ञानी नित्य उपयुक्त होकर शुद्धात्म स्वभाव का परिशीलन करता है वह अल्पकाल में ही सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है। श्री नमस्कार मन्त्र आत्मध्यान का अनन्य साधन है। जिससे दर्शन मोह का विनाश होता है। आत्म भावना से प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, प्रतिहरण, वारण, निवृंति, निन्दन, गर्हण और शुद्धि एक साथ होती है। नमस्कार से आत्मभावना होती है। अतः नमस्कार प्रतिक्रमण, प्रतिसरण आदि रूप है। उससे मिथ्यात्व, अज्ञान तथा पापादि आस्रवों का त्याग होता है, साथ ही आत्मस्वरूप का असंगभाव से ध्यान होता है। शुभोपयोगयुक्त आत्मा निर्वाण को प्राप्त करती है। धर्म ध्यान एवं शुक्ल ध्यान दोनों का कारण होने से नमस्कार स्वर्गापवर्ग को देने वाला है ऐसा सिद्ध होता है। मुक्ति का अर्थ है संसार के रोग शोक से मुक्त होना, ज्ञान दर्शनादि अनुपम वस्तुएँ प्राप्त करना तथा परमसुख तथा परम-आनन्द का अखण्ड अनुभव करना। सत्संग रहित ध्यान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरंगायित रहता है। श्री नमस्कार मन्त्र ससत्संग शुभ ध्यान होने से निस्तरंग अवस्था की प्राप्ति में सहायक होता है। सन्तों के बिना गूढ बात का तार निकलता नहीं, अनन्त की यात्रा में सन्त की सहायता अनिवार्य है। नमस्कार में सन्त की पूरी-पूरी सहायता होने से गूढ बात का सार प्राप्त किया जा सकता है।

आलम्बन के प्रति आदर

आलंबनादरोद्भूत-प्रत्यूहक्षययोगतः ।
ध्यानाद्यारोहणभ्रंशो योगिनां नोपजायते ॥

श्री अध्यात्मसार.

भावार्थ—आलम्बनों के आदर से उत्पन्न हुआ विघ्नों का क्षय योगी पुरुषों को ध्यानादि के आरोहण से च्युत नहीं होने देता, अतः सदालम्बनों का सेवन निरालंबन ध्यान में जाने हेतु सेतुरूप है एवं उसमें जाने के पश्चात् फिर पतन न हो इस हेतु वह आधार आलम्बन रूप बन जाता है।

"एगो में सासओ अप्पा नाणदंसणसंज्जुओ।"

अथवा शुद्ध बुद्ध चैतन्यमय, स्वयंज्योति, सुख, ध्यान इत्यादि विशेषणों वाला शुद्ध स्वरूप श्री परमेष्ठि भगवान् में आविर्भूत है। उनसे सम्बन्ध स्थापित कराने वाला भी परमेष्ठि मन्त्र है, अतः वह सभी मन्त्रों में शिरोमणिभूत मन्त्र है। सभी तत्त्वों में शिरोमणिभूत तत्त्व आत्म-तत्त्व है और उसमें भी शिरोमणिभूत शुद्ध परमात्मतत्त्व है उसे सीधा नमस्कार परमेष्ठि मन्त्र से ही पहुँचता है। यह नमस्कार प्रतिबिम्बित क्रिया रूप होकर अपने शुद्ध स्वरूप में पहुँचता है। शुद्ध स्वरूप का मूल्य अपरम्पार है। शुद्ध स्वरूप चैतन्य का महासागर है। उसके आगे जड़ सुवर्ण एवं रत्न के पर्वत भी मूल्यहीन हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकत्व पृथक्त्व विभक्त आत्मा

सम्यक्‌दृष्टिजीव चैतन्य के स्वभाव एवं सामर्थ्य को पहिचानता है। अतः उसे चैतन्यभिन्न वस्तु के प्रति अन्तर्मन से राग नहीं होता है। प्रत्युत हेय-बुद्धि होती है। उसे स्वरूप में एकत्वबुद्धि एवं पररूप मात्र में विभक्तबुद्धि होती है। ऐसी एकत्व-विभक्त आत्मा ही स्वस्वरूप में प्रकाशित होती है क्योंकि वह शुद्ध है। आत्मा की आत्मतत्त्व की महिमा अगाध है। राग से उसकी भिन्नता एवं ज्ञान से उसकी एकता बताकर उसका आश्रय लेने का विधान शास्त्रकारों ने किया है। श्री नमस्कार मन्त्र सभी आगमों का सार कहलाता है क्योंकि उसमें एकत्व-पृथक्त्व विभक्त शुद्ध आत्मतत्त्व के बहुमान गर्भित नमन का ग्रहण है।

चैतन्य की साधना का पंथ

ज्ञानमय निर्मल द्रव्यगुण पर्याय ही आत्मा का स्वरूप है जिनका स्वामी आत्मा है इसके अतिरिक्त वस्तु का स्वामीत्व जब श्रद्धा एवं ज्ञान ~~श्रद्धा एवं ज्ञान~~ में से हट जाता है तब वे सम्यक् होते हैं। श्री नमस्कार मन्त्र ही चैतन्य की साधना का पंथ है जो वीर का है, कायर का नहीं। श्री वीर प्रभु से प्रशस्त मार्ग पर चढ़े हुए भी वीर हैं जिनकी वीरता उनको इस मार्ग पर आगे बढ़ने हेतु आवश्यक वैराग्य, श्रद्धा एवं उत्साह अर्पित करती है। श्री नमस्कार मन्त्र की आराधना से वह वीरता पुष्ट होती है। उस मार्ग पर आगे बढ़ने हेतु परिषह-उपसर्ग आदि सहन करने का धैर्य भी श्री नमस्कार मन्त्र की आराधना से प्रकट होता है। श्री नमस्कार मन्त्र इस स्वरूप की साधना का पथ होने से आरम्भ में कष्ट दायक है। परन्तु अन्त में अव्याबाध सुखदायक है। तप-अष्टक में कहा है कि--

सदुपायप्रवृत्तानां-उपेयमधुरत्वतः
ज्ञानिनां नित्यमानन्द-वृद्धिरेव तपस्विनाम् ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—उपेय का अर्थ है साध्य। साध्य की मधुरता होने से साधन में प्रवृत्त हुए तपस्वी ज्ञानियों को तप के कष्ट में भी नित्य आनन्द की वृद्धि का अनुभव होता है।

बाह्य कष्ट में भी आन्तरिक आनन्द अनुभव करने की कुंजी श्री नमस्कार मन्त्र में से प्राप्त होती है क्योंकि वह शुद्ध ज्ञान एवं आनन्दमय सच्चिदानन्द स्वरूप के सन्मुख होने की प्रक्रिया है। देहादि से भिन्न-भिन्न शुद्ध आत्म-स्वरूप की सभी भावना करने वाली आत्मा में तीव्र वैराग्य, उदासीनता, प्रतिकूलता में भी सहनशीलता एवं धैर्य आदि आवश्यक सद्गुण सहज प्रकट होते हैं। कहा है कि—

धनार्थिनां यथा नास्ति, शीततापादिदुःसहम्।
तथा भवविरक्तानां, तत्त्वज्ञानार्थिनामपि॥

भावार्थ—धनार्थी जीवों के लिए जैसे शीततापादि के कष्ट दुःसह नहीं होते वैसे ही तत्त्वज्ञान के अर्थी जीवों एवं भव से विरक्त महात्माओं को भी उस मार्ग में आती प्रतिकूलताएँ एवं कष्ट सहन करने दुःसह नहीं होते हैं।

श्री नमस्कार मंत्र से शुद्‌ध चैतन्य स्वभाव के साथ एकत्व साधा जाता है एवं चैतन्य से भिन्न पर पदार्थों एवं रागादि भावों के प्रति उदासीनता समायोजित की जाती है। वह श्री नमस्कार मंत्र शुद्धात्म द्रव्य, शुद्धात्मगुण एवं शुद्धात्म पर्याय के साथ एकत्व, उसकी साधना पर रुचि, वहुमान एवं अन्तरंग प्रीति उत्पन्न करवा कर प्रतिकूलताओं को सहन करने का बल प्रदान करता है। उस हेतु को लक्ष्य में रख ज्यों-ज्यों उसका (श्री नमस्कार मंत्र का) आराधन होता जाता है त्यों-त्यों आत्मतत्त्व के निकट जाने का एवं फलस्वरूप परमात्मतत्त्व की साक्षात् अनुभूति करने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तात्त्विक भवनिर्वेद एवं मोक्षाभिलाष

उपकारी के प्रति कृतज्ञता एवं अपकारी के प्रति क्षमापना सिखाने वाला मंत्र 'नमामि' एवं 'खमामि' है।

व्यवहारधर्म का बीज कृतज्ञता एवं क्षमापना है। कृतज्ञता से उत्पन्न क्षमापन के मूल बहुत गहरे होते हैं। जितना उपकार मैं प्राप्त करता हूँ उतना उपकार मैं दूसरों के प्रति नहीं कर सकता हूँ इस खेद से उत्पन्न क्षमापना जीव को अत्यन्त शुद्ध-पवित्र कर देती है। उपकारियों के उपकार का बदला मैं नहीं चुका सकता हूँ। यह बदला तभी चुक सकता है जबकि मैं जितनों का उपकार लेता हूँ, उससे भी अधिक उपकार दूसरों के ऊपर करूँ। संसार में यह संभव नहीं है। अतः अनन्त काल पर्यन्त जहाँ परोपकार ही हो सके ऐसे सिद्ध पद को प्राप्त करने की तीव्र उत्कंठा उत्पन्न होती है। उसी का नाम तात्त्विक भवनिर्वेद एवं तात्त्विक संवेगमोक्षाभिलाष है। संसार में जितना उपकार लिया है उतना दिया नहीं जाता। फिर वह उपकार भी अपकार मिश्रित होता है। शुद्ध उपकार तो सिद्ध पद में है कि जो उपकार लेता नहीं, अपकार करता नहीं एवं अनन्त काल तक अपने आलम्बन से अनन्त जीवों के लिए सतत उपकार ही करता है। अतः उत्तम जीवों को एक सिद्धपद ही परम प्रिय एवं परम उपादेय प्रतिभासित होता है।

एक में सब एवं सब में एक

नमस्कार में नौ पद समाविष्ट हैं। श्री अरिहंत एवं सिद्धों के नमस्कार से सम्यकदर्शन, श्री आचार्यों के नमस्कार से सम्यक् चरित्र, श्री उपाध्यायों के नमस्कार से सम्यक् ज्ञान एवं श्री साधु के नमस्कार से सम्यक्तपगुण का आराधन होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है अथवा सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरित्र एवं तपगुण के चाहने वाले के लिए पाँच पदों का नमस्कार अनिवार्य है। देव को किया हुआ नमस्कार दर्शन गुण को विकसित करता है एवं धर्म को किया हुआ नमस्कार चारित्र गुण तथा तपगुण को विकसित करता है। सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् ज्ञान सहित साधित तप-संयमरूप धर्माराधना ही मुक्ति फल को देती है। उसका अर्थ है देव गुरु के नमस्कारपूर्वक साधित धर्मक्रिया ही मोक्ष का कारण बनती है अथवा पाँचों परमेष्ठि चारों गुणों को धारण करने वाले होने से पाँचों को किया हुआ नमस्कार चारों गुणों को विकसित करता है।

एगम्मि पूईए सव्वे ते पूईया होंति
जैसे एक की पूजा में सबकी पूजा है वैसे
एगम्मि हीलिये सव्वे ते हीलिया होंति।
एक की अवहेलना सब की अवहेलना है।

इस प्रकार गत प्रत्यागत अथवा अनुवृत्ति व्यावृत्ति कार्यसिद्धि करते हैं। सम्यक् दर्शनादि चार गुणों को धारण करने वाले कोई एक परमेष्ठि को किया हुआ नमस्कार पांचों को ही नमस्कार है। जिस प्रकार यह बात सत्य है वैसे ही चतुर्गुणधारी इन पांचों में से किसी एक को किए हुए अनमस्कार का परिणाम भी पांचों को किया हुआ अनमस्कार होता है। गुणों के समान एक को भी अनमस्कार तत्त्वत सबको अनमस्कार है। जैसे साधु गुण संयुक्त एक साधु को भी किया हुआ नमस्कार अढाई द्वीप में स्थित सभी साधुओं को पहुँचता है वैसे ही साधुगुण युक्त एक को भी अनमस्कार भाव सभी के प्रति अमनस्कार भावतुल्य है। परमेष्ठि की अवज्ञा नहीं करनी चाहिये तभी वह नमस्कार विवेकयुक्त होता है। उपर्युक्त प्रकार से विचार करने से स्पष्ट होता है कि चतुर्गुण के इच्छूक को पांचों पदों का नमस्कार आवश्यक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तात्त्विक नमस्कार

'तत्त्वमसि' तात्त्विक नमस्कार है। उसका प्रयोग उसी समय होता है कि जब ध्याता ध्यानावेश को पूर्ण कर ध्येयावेश में प्रवेश करने वाला होता है। द्रष्टा को जब स्वरूप में अवस्थान करना होता है तब ध्याता गौण बनता है तथा ध्येय मुख्य बनता है अर्थात् ध्येयावेश में प्रवेश के समय तत्त्वमसि का अथवा सोऽहं का मन्त्र-प्रयोग होता है।

नमो अरिहंताणं, मन्त्र से श्री अरिहंत परमात्मा की चारों निक्षेपों से नवों प्रकार की भक्ति होने के बाद उसके फलस्वरूप श्री अरिहंत परमात्मा के मुखकमल से तत्त्वमसि वाक्य का श्रवण करते हुए अपनी आत्मा श्री अरिहंत स्वरूप है ऐसा स्वरूपानुसंधान कर अर्हंमय अपनी आत्मा का ध्यान करना चाहिये। यह ध्यान समस्त पदार्थों की सिद्धि करवाने वाला है।

पाप नाशक एवं मंगलोत्पादक मन्त्र

नमो अरिहंताणं। श्री अरिहंतो को किया हुआ नमस्कार सभी पापों का नाशक है तथा सभी मंगलों का उत्पादक है। उसका मुख्य कारण श्री अरिहंतों का केवल-ज्ञानमय स्वरूप है। ज्ञानस्वरूप रागादि पापों का नाशक है तथा मैत्र्यादि भावों का उत्पादक है। ज्ञानस्वरूप में समरता होने के कारण वह हर्ष, शोक तथा शत्रुमित्र भाव से परे है। हर्ष शोक का मूल सुखदुःख का द्वन्द्व है तथा रागद्वेष का मूल शत्रुमित्रभाव की वृत्ति है। ज्ञानचेतना सत्ता से सभी में समान-भाव से वर्तित होने से, उसी में रमण करने वाले श्री अरिहंतादि को किया हुआ नमस्कार कषाय भाव तथा विषय भाव को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूर कर लेता है। कषाय भाव मुख्यत जीव-सृष्टि के प्रति तथा विषय भाव निर्जीव-सृष्टि के प्रति होता है। ज्ञानभाव से सचराचर विश्व के ज्ञाता-द्रष्टा परमात्मा को किया हुआ नमस्कार अपनी ज्ञान चेतना को जाग्रत कर लेता है अर्थात् जब तक ज्ञान चेतना सम्पूर्ण रूप से आविर्भूत नहीं होती तब तक मात्र समता रूप ज्ञानसरोवर में अवगाहन करते परमेष्ठियों को बार-बार आदरपूर्वक नमन आवश्यक है। यह नमन ज्ञान चेतना में परिणाम रूप बनकर, जिनको नमस्कार किया जाता है उस परमेष्ठि पद की प्राप्ति करवाता है।

परमात्मा का सम्मान परमात्मपद प्रदायक होने से उससे कोई बड़ा शुभ कर्म नहीं। जो कर्म का फल निष्कर्म परम पद प्राप्त करवाता है वही कर्म सर्वश्रेष्ठ कर्म है ऐसा मानने वाले महापुरुष परमेष्ठि-नमस्कार को परम कर्तव्य समझते हैं। परमेष्ठि-नमस्कार प्रथम तो अभिमान रूपी पाप का नाश करता है एवं फिर नम्रता गुण रूपी परम मंगल को प्रदान करता है। तत्पश्चात् इन दोनों के परिणाम स्वरूप अर्थात् अहंकार के नाश एवं नम्रता गुण के लाभ से जीव स्वयं शिव-स्वरूप बन जाता है। अहंकार के नाश से कषाय का नाश एवं नम्रता के लाभ से सर्वश्रेष्ठ विषय (धर्म मंगल) का लाभ होता है। उससे तुच्छ विषयों के प्रति आसक्ति छूट जाती है। विषयों की आसक्ति छूट जाने से कषाय की उत्पत्ति भी रुक जाती है। जिसके फलस्वरूप अप्रमाद एवं अकषाय गुण की उत्पत्ति होने से आत्मा का शुद्ध निरावरण ज्ञानानन्द स्वरूप प्रकटित हो जाता है।

सुख दुःख ज्ञाता एवं राग द्वेष का द्रष्टा

प्रभु को सर्वस्व का दान करने से प्रभु अपने सर्वस्व का दान करते हैं। जिसके पास जो होता है वह वही देता है इस नियम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से नमस्कार करने वाला अपने मन वचन काया को प्रभु को सोंपता है। उसके बदले में नमस्कार करने वाले को प्रभु ज्ञान दर्शन-चरित्र स्वरूप परमात्मपद को अर्पित करते हैं। जगत में सर्वश्रेष्ठ दान परमात्मा का दान है। परमात्मा को नमस्कार करने वाला स्वयं उस दान को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है नमस्कार करने से अधिकारी बने उस जीव को परमात्मा अपने पद को ही सोंप देते हैं। भक्त 'नमो अरिहंताणं' बोलता है। उसके बदले में भगवान, भक्त को 'तत्त्वमसि' कह कर 'तू ही भगवान है' ऐसा वचन देते हैं।

सुख दुःख का ज्ञाता एवं राग द्वेष का द्रष्टा जो हो सकता है वह स्वयं अंशतः भगवान है क्योंकि उसकी वह साधना ही कालक्रम से साधक को केवलज्ञान एवं केवलदर्शन प्रदान करने वाली होती है। केवलज्ञान गुण एवं केवलदर्शन गुण के अधिकारी होने के लिए द्रष्टा भाव एवं ज्ञाता भाव समायोजित करना सीखना चाहिये।

सुख दुःख कर्म के फल हैं एवं राग द्वेष स्वयं भावकर्मस्वरूप हैं। भाव कर्म का कर्तृत्व एवं कर्म फल का भोक्तृत्व छोड़कर जीव जब उसका ज्ञातृत्व एवं द्रष्टत्व मात्र अपने में स्थिर करता है तब वह निश्चय तत्त्व का ज्ञाता बनकर मोक्ष मार्ग में प्रयाण प्रारम्भ करता है। ज्ञातृत्व-द्रष्टृत्व भाव जब परिपक्व बनते हैं तब वह जीव योगशिखर पर आरूढ होकर मोक्ष के सुख को सिद्ध करता है।

भक्ति एवं मैत्री का महामन्त्र

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः

इस सूत्र में सम्यक् दर्शन का संक्षिप्त अर्थ जिन भक्ति एवं जीव मैत्री है। सम्यक् ज्ञान का संक्षिप्त अर्थ जिन-स्वरूप ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निज स्वरूप है एवं निज स्वरूप ही जिनस्वरूप है। जिनभक्ति से विषय की विरक्ति एवं जीव-मैत्री से कषाय के त्याग को भी सम्यक् चारित्र का संक्षिप्त अर्थ कहा जा सकता है।

'नमो अरिहंताणं', श्री अरिहंतों की भक्ति जिस किसी प्रकार से हो वह सब नमस्कार रूप हैं। उस नमस्कार का फल श्री अरिहंत भगवान की ओर से 'तत्त्वमसि' जैसे उपदेश के रूप में मिलता है। जिस अरिहंत स्वरूप की तू भक्ति करता है, वह तू स्वयं है ऐसा अन्त में निश्चय होता है। वही भक्ति का पारमार्थिक फल है। 'नमो अरिहंताण', मित्रता का महामन्त्र है एवं भक्ति का भी महामन्त्र है। श्री अरिहंत मैत्रीभाव से अरि-भाव को—शत्रुभाव को मारने वाले हैं, उनको किया गया नमस्कार मैत्री का महामन्त्र बन जाता है। अरिहं का अर्थ है शुद्ध आत्मा। उनको नमस्कार होने से वह भक्ति का महामंत्र बन जाता है। भक्ति एवं मैत्री परस्पर अविनाभावी हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व असम्भव है।

आत्मस्वरूप की भक्ति तभी पूर्ण मानी जाती है जब साधारण एवं निरावरण दोनों प्रकार की आत्माओं के ऊपर स्नेहभाव उत्पन्न होता है। निरावरण स्वरूप के प्रति स्नेह ही प्रमोद एवं साधारण स्वरूप के प्रति स्नेह ही करुणा-माध्यस्थ्य है। यदि करुणा-माध्यस्थ्य नहीं हो तो प्रमोद भी सच्चा नहीं होता है। यदि प्रमोद नहीं हो तो करुणा-माध्यस्थ्य भी सच्चा नहीं। जीवतत्त्व की यही सच्ची उपलब्धि है कि उसमें जीव के दुःख के प्रति सहानुभूति एवं करुणा के समान ही उसके सुख के प्रति हर्ष एवं प्रमोद होने चाहिए। इस प्रकार भक्ति एवं मैत्री दोनों को एक साथ प्रकटित करने वाला मन्त्र श्री नमस्कार महामन्त्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमपद में समग्र मोक्षमार्ग

मैत्री एवं भक्ति सम्यग्दर्शन के लक्षण हैं। उनके पीछे सम्यक्ज्ञान होना आवश्यक है। वह ज्ञान एकत्व का है। जीव, जगत् एवं जगदीश्वर की एकता का ज्ञान ही सच्ची भक्ति एवं मित्रता को प्रकट कर सकता है। यह एकता, गुण, जाति एवं स्वभाव से है। सजातीय एकता के सम्बन्ध का ज्ञान भक्तिप्रेरक एवं मैत्रीप्रेरक होता है अतः वह सम्यग् ज्ञान है। जहाँ सम्यग् ज्ञान एवं सम्यग्दर्शन होता है, अविनाभावरूप से चारित्र वहाँ निश्चय रूप से रहेगा। ज्ञान और दर्शन तभी सत्य माने जाते हैं कि जब वे जीवन में क्रियान्वित हों। उस निर्मल आचरण का नाम ही चारित्र है। उस चारित्र के दो प्रकार हैं एक प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप एवं दूसरा स्वभावरमणतारूप। स्वभावरमणतारूप चारित्र तो व्यवहारचारित्र का फल है। हिंसादि आस्रवों से निवृत्ति एवं क्षमादि धर्मों में प्रवृत्ति ही व्यवहारचारित्र है। मैत्री से हिंसादि का निरोध होता है एवं भक्ति से स्वरुपरमणता विकसित होती हैं। कषाय के अभाव को लाने में मैत्री ही मुख्य है एवं भक्ति ही मुख्यतः विषयासक्ति को हटाने वाली है। भक्ति का विषय सर्वश्रेष्ठ परमात्मतत्त्व है अतः भक्ति के प्रभाव से तुच्छ विषयों का आकर्षण अपने आप चला जाता है। विषय कषाय को जीतने वाली आत्मा स्वयं ही मोक्ष है। भक्ति तथा मैत्री उसके साधन हैं। उनको विकसित करमे वाला मन्त्र नवकार अथवा उसका प्रथमपद है। अतः श्री नयस्कार मंत्र में रत्नत्रयी स्थित है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के तीन मुख्य गुण हैं। श्री अरिहंतों को नमस्कार ज्ञानादि तीनों गुणों को विकसित करता है क्योंकि उस मन्त्र से भक्ति तथा मैत्री साक्षात् पुष्ट होती हैं, चैतन्य के साथ वह एकता का ज्ञान करवाता है तथा विषय-कषाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की परिणति से आत्मा को छुड़ाते हैं। विषयों में सर्वश्रेष्ठ विषय श्री अरिहंत है। उनके प्रति व्यक्त आदर दूसरे विषयों की तुच्छता का भाव कराता है। जीवों के प्रति अमैत्री ही कषायों का मूल है। श्री अरिहंतों को किया हुआ नमस्कार मैत्री सिखाता है जिससे कषाय निर्मूल होते हैं। विषय-कषाय से युक्त आत्मा स्वयं चारित्र रूप है। इस प्रकार सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रयी, जिसे मोक्षमार्ग कहा जाता है, वह, नवकार के प्रथम पद में ही संगृहीत है। इससे उसके आराधक का मोक्ष रूपी ध्येय सिद्ध होता है।

सात धातु एवं दश प्राण

नमस्कार कर जो श्री अरिहंत की भक्ति करता है वह श्री अरिहंत परमात्मा से 'वह तू ही है' (तत्त्वमसि) ऐसा अनुग्रह प्राप्त करता है। अरिहंत तू स्वयं है ऐसा आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु श्री अरिहंतों की भक्ति अनिवार्य है। जिसकी भक्ति की जाती है उसका स्वरूप भक्त में प्रकट होता है। श्री अरिहंत देव की भक्ति से आत्मा में प्रच्छन्न रूप से स्थित अरिहंत स्वरूप पहले मन-बुद्धि के समक्ष प्रकट होता है। मन और बुद्धि को श्री अरिहंत के ध्यान में पिरोने से उन दोनों के समक्ष भक्त में निहित श्री अरिहंत-स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है। श्री अरिहंत की भक्ति का यह प्रभाव है। अतः श्री अरिहंत की भक्ति मन-वचन-काया से करने, करवाने एवं अनुमोदना से भेदित करने के लिए प्रयत्न करना चाहिये। वही प्रयत्न करने योग्य है जिसमें सातों धातु भेदित हो जायें एवं दशों प्राण उसमें गुंथ जायं। जब शरीर रोमञ्चित हो जाय एवं नेत्रों में हर्ष के अश्रुओं की धारा बहने लगे तभी समझना चाहिए कि श्री अरिहंत की भक्ति में सातों धातु एवं दशों प्राण ओतप्रोत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो गए हैं। इसीलिए त्रिकरण योग से श्री अरिहंत की भक्ति करने का विधान है। जब तीनों योग एवं तीनों करण श्री अरिहंत के ध्यान में पिरो जायं तब अन्तःकरण निर्मल हो जाता है एवं निर्मल अन्तःकरण में अरिहंत तुल्य आत्मा का शुद्धस्वरूप प्रतिबिम्बित होता है।

परमात्मा — समापत्ति

विषय की समापत्ति अर्थात् तीन करण से-तीन योग से होने वाला विषय का ध्यान आत्मा को तद्रूप बनाता है, तो आत्मा (सब्जेक्ट) को समापत्ति अर्थात् तीनकरण-तीन योग से होने वाला शुद्धात्मा का ध्यान आत्मा को परमात्मा स्वरूप बनाता है। विहित अनुष्ठान को भी शास्त्रोक्त विधानानुसार करने से परमात्मा के साथ समापत्ति का कारण बनता है क्योंकि शास्त्रोक्त अनुष्ठान करते समय शास्त्र-कथक शास्त्रकारों पर भी बहुमान गर्भित अन्तंरग प्रीति होती है। वह प्रीति परमात्मा-समापत्ति का कारण बनती है। विहित अनुष्ठान द्वारा होने वाला परमात्म स्मरण परमात्म-समापत्ति का कारण होता है क्योंकि वह स्मरण बहुमान गर्भित होता है। भगवान की आज्ञा का आराधन एक प्रकार से बहुमान गर्भित परमात्म-स्मरण ही है। उससे भगवान का नाम ग्रहण एवं प्रतिमा पूजन भी भगवान की आज्ञा के आराधनरूप में करणीय है। आज्ञा के आराधन में आज्ञाकारक का बहुमान गर्भित स्मरण रहता है। अतः वह समापत्ति का सरल साधन बनता है। भगवान के स्मरण को एवं क्लिष्ट कर्म को सहअनवस्थान विरोध है। जहाँ बहुमान गर्भित भगवत्स्मरण होता है वहाँ संसार भ्रमण के कारण भूत क्लिष्ट कर्म टिक नहीं सकते। भगवत्स्मरण मिथ्या मोह का नाश कर आत्मा के शुद्ध स्वरूप के साथ एकता का पैदा करवाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्त्रात्मक दो पद

नमामि सव्व-जिणाणं ।
खमामि सव्व-जीवाणं ।।

भावार्थ—जिनस्वरूप प्राप्त हुए सभी को मैं नमस्कार करता हूं क्योंकि उनकी तरफ से मुझे अनुग्रह प्राप्त होता है कि जिस अनुग्रह से मैं मेरे जिनस्वरूप को प्राप्त करता हूं। जिन स्वरूप को प्राप्त करने में मुझसे होते प्रमाद, अज्ञान एवं मिथ्यात्व को मैं निन्दित करता हूं। मेरे उस अपराध हेतु सभी जीवों से क्षमा मांगता हूं। सभी जीवों को जिनस्वरूप की प्राप्ति हेतु आलम्बन रूप होने में होते विलम्ब एवं विघ्नरूप मेरे अपराधों के लिए मैं क्षमा माँगता हूं। सभी जीवो! मेरे उन अपराधों को क्षमा करो, मुझे क्षमादान दो।

इस प्रकार अर्थभावनापूर्वक इन दो पदों के ध्यान से एवं स्मरण से मेरी आत्मा को मैं शुद्ध-निर्मल करता हूं। रागादि से भिन्न एवं ज्ञानादि से अभिन्न मेरे शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हेतु मन्त्रस्वरूप इन दो पदों का मैं निरन्तर भाव से स्मरण करता हूं।

नमामि सव्व जिणाणं

इस मन्त्र से सर्व उपकारियों को नमस्कार है। सबसे श्रेष्ठ उपकार "द्रव्यतया परमात्मा एक जीवात्मा" अर्थात् द्रव्य से परमात्मा ही जीवात्मा है। ऐसा ज्ञान प्रदान करने वालों का है। सभी जिन जीव मात्र को जिनस्वरूप देखते हैं, अजिन-स्वरूप को देखते हुए भी नहीं देखने के बराबर करते हैं एवं जिनस्वरूप को आगे कर उत्तेजना प्रदान करते हैं। अतः वे सर्वश्रेष्ठ उपकार कर रहे हैं। उनको किया हुआ नमस्कार कृतज्ञतागुण एवं ज्ञानगुण दोनों को विकसित करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खमामि सव्व जीवाणं

सभी जीवों में सत्तारूप में जिनस्वरूप होते हुए भी उसे स्वरूप में नहीं देखने रूप अपराध हेतु मैं क्षमायाचना करता हूँ। उन अपराधों हेतु क्षमायाचना करने से उस स्वरूप को देखने वाले उपकारियों को किया जाने वाला नमस्कार तात्त्विक होता है।

नमामि सव्व जिणाणं। खमामि सव्व-जीवाणं।

शब्दार्थ—सभी जिनों को मैं नमस्कार करता हूँ सभी जीवों से मैं क्षमायाचना करता हूँ।

भावार्थ-नमस्कार करता हूँ। अर्थात् उनके उपकार को स्वीकार करता हूँ। क्षमायाचना करता हूँ अर्थात् मेरे अपकार को स्वीकार करता हूँ।

मुझ पर हुए, होरहे एवं होने वाले सभी उपकारियों के उपकार को मैं कृतज्ञभाव से स्वीकार करता हूँ। मुझ से हुए, हो रहे तथा होने वाले सभी अपकारों को मैं सरलभाव से स्वीकार करता हूँ एवं फिर नहीं करने के भाव से क्षमायाचना करता हूँ। बड़े से बड़ा उपकार उनका है जो अपने जिनस्वरूप को देख रहे हैं तथा उसकी प्राप्ति तक अपने अपराधों को क्षमा कर रहे हैं। उनकी करुणा, उनकी मैत्री, उनका प्रमोद तथा उनका माध्यस्थ्य मेरे जिनस्वरूप को प्राप्ति में उपकारक है। इसलिए मैं उनकी स्तुति करता हूँ तथा मुझ में सभी जीवों के प्रति चारों भाव प्रकटित हों ऐसी प्रार्थना करता हूँ। उससे विपरीत मेरे भावों की मैं निन्दा करता हूँ, गर्हणा करता हूँ एवं सभी जीवों के समक्ष तदर्थ क्षमा माँगता हूँ। सभी जीवों के समक्ष उनके प्रति आचरित अपराधों हेतु क्षमायाचना करता हूँ। सभी जीवों के प्रच्छन्न जिनस्वरूप को देखकर उनके प्रति मैत्री, प्रमोद, कारुण्य एवं माध्यस्थ्य भाव को विकसित करता हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृतज्ञता एवं परोपकार की करणीय भाव से स्वीकृति ऋणमुक्ति निष्पन्न करती है। उपकारी के प्रति कृतज्ञता का भाव तथा अपकारी के प्रति भी उपकार करने का भाव आए बिना दोनों ऋणों से मुक्ति असम्भव है। एक ऋण उपकार लेने से होता है। दूसरा ऋण अपकार करने से होता। अतः उभय ऋण की मुक्ति हेतु नमामि तथा खपामि दोनों भावों को आराधन की समान आवश्यकता है।

नमो पद का महत्त्व

नमो पद का एक अर्थ द्रव्य भाव संकोच है। द्रव्य काया एवं वाणी का तथा भाव से मन तथा बुद्धि का बाह्य पदार्थों में से संकोच साधकर उसे आत्माभिमुख बनाकर सभी महापुरुष परम पद को प्राप्त हुए हैं अथवा दूसरे प्रकार से द्रव्य संकोच अर्थात् शरीरादि बाह्य वस्तु के मद का त्याग तथा भाव संकोच अर्थात् मन, बुद्धि आदि के अभिमान का त्याग। इस प्रकार मद तथा मान का त्याग होने से वृत्ति अन्तर्मुखी होती है तथा उससे सर्वश्रेष्ठ वस्तुओं का ज्ञान एवं ध्यान फलीभूत होता है। ज्ञान का फल समता-संवर है तथा ध्यान का फल निरोध-निर्जरा है। वह उसी का वरण करता है जिसमें मन में काया तथा उपलक्षण से पुद्गल के संयोग जनित सर्व औदयिक भावों का अभिमान गल गया हो। साथ ही मन एवं बुद्धि तथा उपलक्षण से सर्व प्रकार के क्षायोपशमिक भावों का भी अहंकार चला गया हो। इससे यह सिद्ध हुआ कि जाति, कुल, रूप, बल, ऐश्वर्य एवं वाल्लभ्यादि औदयिक भावों के मद का त्याग ही मुख्य रूप से द्रव्य-संकोच है तथा तप श्रुत, ज्ञान एवं बुद्धि आदि क्षयोपशम भावों के मान का त्याग ही मुख्यरूप से भावसंकोच है। द्रव्य तथा भाव अथवा बाह्य एवं अभ्यन्तर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन दोनों प्रकार के मद तथा मान के त्याग का प्रणिधान ही द्रव्य-भाव-संकोच है एवं वही नमस्कार का मुख्य प्रयोजन है ; ऐसा नमस्कार भाव अथवा उसका लक्ष्य, धर्म के प्रारम्भ में अतीव आवश्यक है।

नमो मन्त्र से अहंता—ममता का त्याग

अहंता अथवा ममता संसार में भटकाने वाली वस्तु है। अहन्ता का अर्थ है 'कर्म का कर्ता मात्र मैं ही हूँ' ऐसी बुद्धि। ममता का अर्थ है 'कर्मफल का अधिकारी मैं हूँ' ऐसी बुद्धि। इन दोनों को निवारने हेतु कर्म का कर्त्ता केवल मैं नहीं, किन्तु काल, स्वभाव, भवितव्यता एवं पूर्व कृत कर्म वगैरह के सहयोग से कर्म हो रहा है ऐसा विचार करना एवं कर्म फल भी सब के सहयोग का परिणाम है, उस पर मात्र मेरे अकेले का अधिकार नहीं, ऐसा विचार करना। नमस्कार के आराधक को अपने सभी कर्म एवं उनके फल, जिनको नमस्कार करता है, उन नमस्कार्यों को समर्पित कर देना चाहिए क्योंकि निमित्त कर्त्तव्य उनका है। उनके अवलम्बन से ही कर्म एवं उसके फल में श्रेष्ठता आती है। प्रत्येक शुभ कर्म एवं उसका श्रेष्ठ फल जिसके अवलम्बन से शुभ एवं श्रेष्ठ बनता है उनके स्वामीत्व का है, ऐसा व्यवहार नय कहता है। इससे दोनों पर स्वामीत्व उनका है ऐसी वृत्ति धारण करनी चाहिये। उसके परिणाम-स्वरूप अहंत्व-ममत्व गल जाता है एवं नम्रता, निरभिमानता, सरलता, सन्तोष आदि गुणों की उत्पत्ति होती है तथा भक्ति के सुमधुर फलों का अधिकारी बन जाता है।

अव्यय पद

व्याकरण शास्त्र के नियमानुसार नमो अव्यय पद है। मोक्ष भी अव्यय पद है। इसमें "नमो" अव्यय, मोक्ष पद का बीज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी है। अव्ययपद ही ज्ञातव्य ध्यातव्य एवं प्राप्तव्य है। वाक्य में कर्त्ता, कर्म एवं क्रिया तीन होते हैं। यहाँ नमो अव्यय होने से उसमें मात्र क्रिया है पर कर्त्ता या कर्म नहीं। साधना के समय जब कर्त्ता एवं कर्म गौणहोते हैं तथा उपयोग में मात्र क्रिया रहती है तभी साधना शुद्ध होती है। नमो पद का उच्चारण ही क्रियावाचक हो किसी श्रेष्ठ तत्त्व का सीधा भान कराता है अथवा ध्याता, ध्येय तथा ध्यान, इस त्रिपुटी में से जब ध्याता का विस्मरण हो जाता है तब मनोवृत्ति केवल ध्येयाकार बनती है, तथा ध्यान यथार्थ हुआ माना जाता है। नमस्कार की क्रिया में भी जब कर्त्ता तथा कर्म का विस्मरण हो केवल क्रिया रहती है तभी साधना शुद्ध हुई गिनी जाती है। फिर नमो पद का उच्चारण ही वैखरीवाणी का प्रयोग है अतः वह क्रियायोग है। अर्थ का भावन ही मध्यमावाणी हो भक्तियोग है। नमस्कार की आन्तरक्रिया पश्यन्ती रूप है अतः वह ज्ञानयोग है। इस प्रकार कर्म, भक्ति तथा ज्ञान इन तीनों योगों की साधना नमो पद में निहित है।

निर्मल वासना

नमस्कार की साधना से मलिन वासनाओं का त्याग होता है, निर्मल वासना का स्वीकरण होता है तथा अन्त में चिन्मात्र वासना अवशिष्ट रहती है। मलिन वासना दो प्रकार की होती हैं—एक बाह्य है तथा दूसरी आन्तर। विषयवासना बाह्य तथा मानसवासना आभ्यन्तरिक है। विषयवासना स्थूल है तो मानसवासना सूक्ष्म है। विषयों के भोग काल में उत्पन्न हुए संस्कार, विषयवासना हैं तथा विषयों की कामना के काल में उद्भूत संस्कार, मानसवासना है। दूसरी प्रकार से लोकवासना अथवा देहवासना ही विषयवासना है तथा दम्भ, दर्पादि ही मानसवासना है। नमस्कार भाव तथा नमस्कार की क्रिया से बाह्य-आन्तर उभय प्रकार की मलिन वासना का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाश होता है तथा मैत्री, मुदितादि निर्मल भावनाएं प्रकट होती हैं। चिन्मात्र वासना का अर्थ है मन, बुद्धि आदि चैतन्य का शुभ व्यापार। उससे कार्याकार्य के विवेकरूपी सद्विचार जागते हैं तथा अन्त में उसका भी परमात्म-साक्षात्कार में लय हो जाता है। सद्विचार तथा सद्विवेक साधन रूप 'अपर' ज्ञान हैं तथा आत्मसाक्षात्कार-परमात्मसाक्षात्कार साध्यरूप 'पर' ज्ञान है। साक्षात् या परम्परा से उभय प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति नमस्कार भाव तथा नमस्कार की क्रिया से सिद्ध होती है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि--

वन्धो हि वासनाबन्धो, मोक्षः स्याद् वासनाक्षयः।
वासनास्त्वं परित्यज्य, मोक्षार्थित्वमपि त्यज॥

अर्थ--वासना का बन्ध ही बन्ध है। वासना का क्षय ही मोक्ष है। वासनाओं का त्याग कर तू मोक्षार्थिपन का भी त्याग कर अर्थात् आत्म साक्षात्कार को प्राप्त कर।

परमेष्ठि नमस्कार से समत्व की सिद्धि

चौदहपूर्व तथा द्वादशांगी से अपने को जो अनेक प्रकार का प्रकाश मिलता है उनमे से एक प्रकाश यह है कि आत्म-दृष्टि से कोई जीव अपने से छोटा नहीं तथा देहदृष्टि से कोई जीव अपने से बड़ा नहीं है। कर्ममुक्त अवस्था सब जीवों को समान सुखदायक होती है। कर्मबद्ध अवस्था सबको समान कष्टदायक होती है क्योंकि कर्मजनित सुख भी अन्त में दुःखदायक हैं। सभी जीवों के साथ अपनी तुल्यता का इस प्रकार भावन तथा उससे प्राप्त होता अपूर्व समत्व ही मोक्ष का असाधारण कारण है। यह भावना आठों प्रकार के मद को, चारों प्रकार के कषाय को तथा पाँचों प्रकार की इन्द्रियों को विजित कराने वाली होती है। इससे परम पुरुषार्थ की सिद्धि होती है। श्री पंचपरमेष्ठि नमस्कार इस में भावना से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री सिद्धि पद को प्राप्त उन्नत श्री अरिहंतों, वर्तमान के उत्कृष्ट १७० तथा जघन्य २० श्री अरिहंतों तथा भविष्यकाल के अनन्त श्री अरिहंतों को नमस्कार होता है। साथ ही अतीतकाल के अनन्त सिद्धों को वर्तमान काल के एक समय में होने वाले उत्कृष्ट १०८ सिद्धों को तथा भविष्य के अनन्त सिद्धों को नमस्कार होता है। वैसे ही अतीतकाल के अनन्त, सिद्धों को वर्तमान काल के सभी क्षेत्रों के केवल ज्ञानियों तथा छद्मस्थ मुनियों तथा भविष्य काल के अनन्त आचार्यों, उपाध्यायों आदि साधु भगवान को नमस्कार होता है। यह नमस्कार परमेष्ठियों में स्थित समत्व को उद्देशित होने से समत्व की सिद्धि करवाता है।

पाँच प्रकार के गुरु

श्री नमस्कार मंत्र में पाँच प्रकार के गुरु समाविष्ट हैं। श्री अरिहंत मार्गदर्शक होने से प्रेरक गुरु हैं, श्री सिद्ध अविनाशी पद प्राप्त होने से सूचक गुरु हैं। श्री आचार्य अर्थोपदेशक होने से बोधक गुरु हैं श्री उपाध्याय सूत्र के दाता होने से वाचक गुरु हैं एवं श्री साधु मोक्ष मार्ग में सहायक होने से सहायक गुरु हैं। पंच गुरुओं को नमस्कार रूप होने से श्री नमस्कार मंत्र को गुरु मंत्र अथवा पंचमंगल भी कहते हैं। यह पंचमंगल सूत्ररूप होते हुए भी बार-बार मनन करने योग्य होने से, साथ ही उसके सम्यक् आराधन द्वारा चमत्कारिक परिणाम आते होने से उसकी प्रसिद्धि लोक में मंत्र रूप में हुई है। पाँच ज्ञान एवं चार शरण की तरह वे भाव मंगल हैं। द्रव्य-पाप की विशेषता को जानने वाला जीव इस मंत्र का विशेष रूप से अधिकारी होता है।

ध्यान एवं लेश्या

समस्त इन्द्रियों को भ्रूमध्य आदि स्थानों में केन्द्रित कर के जो चिन्तन होता है, उसे ध्यान कहते हैं। ध्यान के दूसरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भा कई अर्थ है। श्रुतज्ञान को भी शुभ ध्यान कहा जाता है। चिन्ता तथा भावनापूर्वक स्थिर अध्यवसाय को भी ध्यान कहा गया है। निराकार निश्चल बुद्धि, एक प्रत्ययसन्तति, सजातीय प्रत्यय की धारा, परिस्पन्दवर्जित एकाग्र चिन्तानिरोध आदि उनके ध्यान के अनेक पर्याय कहे गये है उन सबका संग्रह परमेष्ठि ध्यान में समझना चाहिये। कमलबन्ध से, त्रिकरणशुद्धि से तथा बिन्दुनवक से भी नमस्कार का ध्यान हो सकता है। नमस्कार के ध्यान का फल लेश्याविशुद्धि याने माया, मिथ्यात्व तथा निदान, इन तीनों शल्य से रहित चित्त के परिणाम हैं। श्रद्धालु आत्मा जो कोई क्रिया करती है वह दूसरों को नीचे गिराने के लिए या अपने उत्कर्ष के लिए नहीं होती। जिसमें मुख्यतः परापकर्ष की वृत्ति होती है वह माया शल्य है एवं जिसमें मुख्यतः स्वोत्कर्ष साधने का मनोरथ हो वह निदान शल्य है। जिसमें स्वमति की कल्पना मुख्य हो वह मिथ्यात्व शल्य है। क्रिया की सफलता हेतु प्रत्येक क्रिया माया, मिथ्यात्व तथा निदान—इन तीन शल्य से रहित होनी चाहिये अर्थात् निर्दम्भ, निःशंक तथा निराशंस भाव से होनी चाहिये। श्री नमस्कार का ध्येयनिष्ठ आराधन जीव को निर्दम्भ, निःशंक तथा निष्काम बनाता है क्योंकि उसमें ममत्व-भावका शोषण तथा समत्व भाव का पोषण होता है।

लेश्याविशुद्धि एवं स्नेह-परिणाम

श्री नमस्कार मन्त्र के आराधन से दूसरे भी तीन गुण पुष्ट होते हैं। वे है क्षमता, दमता, तथा शमता। क्षमता अर्थात् क्रोधरहितता, दमता अर्थात् कामरहितता तथा शमता अर्थात् लोभरहितता। दूसरों को अपने समान देखने वाला किस पर क्रोध करे? दूसरे को पीड़ा हो उस प्रकार के काम अथवा लोभ का सेवन भी वह किस प्रकार करे? दूसरे के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःख को अपना दुःख मानने वाले तथा दूसरे के सुख को अपने सुख जितनी ही कीमत आँकने वाले में काम, क्रोध तथा लोभ ये तीनों दोष लुप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार माया, मिथ्यात्व तथा निदान ये तीनों शल्य भी चले जाते हैं। श्री नमस्कार मन्त्र से होती लेश्याविशुद्धि का यह फल है। 'लेश्याविशुद्धि' तथा 'स्नेह का परिणाम' एक दृष्टि से समान अर्थ के वाचक शब्द हैं। श्री नमस्कार मन्त्र समस्त जीव-राशि पर स्नेह का परिणाम विकसाता है, साथ ही इस स्नेह के परिणाम में काम क्रोध एवं लोभ ये तीनों दोष तथा माया, मिथ्यात्व एवं निदान ये तीनों शल्य पानी से भरे कच्ची मिट्टी के घड़े की तरह गल जाते हैं तथा आत्मा क्षान्त. दान्त एवं शान्त तथा निष्काम, निर्दम्भ तथा निःशल्य हो क्रिया के उत्कृष्ट फल को प्राप्त कर सकती है।

कृतज्ञता गुण का विकास

नवकार चौदह पूर्व का सार है एवं समस्त श्रुत ज्ञान का रहस्य है। उसका एक कारण नमस्कार से कृतज्ञता गुण का समायोजन होता है। कृतज्ञता गुण सभी सद्गुणों का मूल है। उसका शिक्षण नमस्कार से मिलता है। कृतज्ञता गुण का उत्पादक परोपकार गुण है। परोपकार गुण सूर्य के स्थान पर है तो कृतज्ञता गुण चन्द्रमा के स्थान पर। जिससे उपकार होता है, उसके प्रति कृतज्ञ रहना ही धर्म का आधार है। ऐसा ज्ञान प्रारम्भ से ही देने हेतु श्री नमस्कार मत्र को मूल मंत्र या महा मंत्र कहा है। नवकार बिना तप, चारित्र एवं श्रुत निष्फल कहे गए हैं। इसका अर्थ कृतज्ञता भाव के बिना समस्त आराधना अंकरहित शून्य जैसी है। सम्यक्त्व गुण भी कृतज्ञताभाव का सूचक है क्योंकि उसमें देव तत्त्व, गुरुतत्त्व एवं धर्म तत्त्व के प्रति भक्ति है, नमस्कार है, श्रद्धागर्भित बहुमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तथा ये तीनों तत्त्व परम उपकारक है ऐसा हार्दिक स्वीकरण है। जिससे सभी कुछ शुभ मिला है, मिल रहा है तथा मिलने वाला है उसको याद करना तथा उसके प्रति नम्र भाव धारण करने का ही दूसरा नाम कृतज्ञता गुण है। कृतज्ञता गुण एक प्रकार की ऋण मुक्ति की भावना भी है। परोपकार गुण मुक्तिमार्ग में ऋणमुक्ति की भावना से उत्पन्न हुआ शुभ भाव है। ऋणमुक्ति तथा कर्ममुक्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अव्याबाध सुखस्वरूप मोक्ष में देना ही है लेना कुछ भी नहीं है। संसार में तो केवल लेना ही है पर देना कुछ भी नहीं। लेने की क्रिया में से छूटने का उपाय, जहाँ तक कुछ भी लेना नहीं तथा केवल देना ही है वैसा मोक्ष प्राप्त करना है। उस मोक्ष को प्राप्त करने का अनन्य साधन एक नमस्कार भाव या कृतज्ञता गुण है। योग्य को नमस्कार करने वाले का विकास तथा नमस्कार नहीं करने वाले का विनाश ही इस संसार का अविचल नियम है। दान रुचि भी नमस्कार की ही एक रुचि है। नमस्कार सर्वश्रेष्ठ पुरुषों को एवं सर्वश्रेष्ठ सद्गुणों को सर्वश्रेष्ठ दान है। दान रुचि के बिना दानादि गुण जैसे गुण नहीं बन सकते वैसे ही नमस्कार रुचि के बिना पुण्य के कार्य भी पुण्यानुबन्धी पुण्य स्वरूप नहीं बन सकते हैं। नम्रता का मूल कृतज्ञता, कृतज्ञता का बीज परोपकार तथा परोपकार का बीज जगत-स्वभाव है। विश्व का धारण, पालन, पोषण परोपकार से ही हो रहा है। कोई भी क्षण ऐसा नहीं है कि जिसमें एक जीव को दूसरे जीव की तरफ से उपग्रह-उपकार न होता हो। इस सम्बन्ध में कहा है कि—

तरुवर सरवर संतजन, चोथा बरसत मेह ।
परमारथ के कारणे, चारों धरिया देह ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः,
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
नादन्ति सस्यानि खलु वारिवाहाः,
परोपकाराय सतां विभूतयः ॥२॥
परकार्याय पर्याप्ते, वरं भस्म वरं तृणम् ।
परोपकृतिमाधातु-मक्षमो न पुनः पुमान् ॥३॥
तथा–सूर्याचन्द्रमसौ व्योम्नः, द्वौ नरौ भूषणं भुवः ।
उपकारे मतिर्यस्य, यश्च तं न विलुम्पति ॥४॥

नमस्कार में नम्रता

अहिंसादि धर्म मात्र का मूल नम्रता है। धर्म को सानुबन्ध बनाने वाला नमस्कार का भाव है। धर्म प्राप्त करने का पहला सोपान नम्र होना है। जो नम्र नहीं बन सकता है वह धर्म को पहिचान नहीं सकता है। धर्म को पहिचानने हेतु कर्म के स्वरूप को जानना चाहिए तथा जो कर्म के स्वरूप को जानता है वह अवश्य नम्र बनता है। नम्र बनकर संयमी होने वाली आत्मा आते कर्मों को रोकती है एवं पुराने कर्मों को बिखेरने का साधन तप है तथा वह उसे करने के लिए सदा उल्लसित रहता है। एक नमस्कार में अहिंसा, संयम एवं तप इन तीनों प्रकार के धर्म के अंगों को सम्मिलित करने का सामर्थ्य है। धर्म करके जो गर्व करता है वह धर्म वास्तविक नहीं पर धर्म का आभास मात्र है। कर्म की भयानकता के ज्ञान से होती नम्रता ही वास्तविक नम्रता है। कर्म के स्वरूप का ज्ञान होते ही वह ज्ञान जीव को नम्र बना देता है। कर्म स्वरूप के ज्ञान बिना कर्म कीच को निकालने या रोकने की वृत्ति हो नहीं सकती। नम्रता को पैदा करने वाला तत्वज्ञान यदि नहीं मिलता है तो आत्मा कर्म का क्षय करने वाले तात्त्विक धर्म को कैसे प्राप्त कर सकती है? अहिंसा, संयम तथा तपरूपी सत्य धर्म को प्राप्त करने हेतु कर्म की सत्ता बंध, उदय तथा उदीरणादि को श्री सर्वज्ञ भगवान् से कहा है। उनको जानने से प्राप्त तात्त्विक नम्रता से सच्चे अहिंसादि धर्मों की प्राप्ति तथा पालन हो सकता है। विनय नमो का अर्थात् नम्रता का पर्याय है। अष्टकर्म विनयन-दूरीकरण विनय की शक्ति है। उसका अर्थ यह है कि अष्टकर्म के बन्ध में मुख्य कारणभूत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टमद है, उसका समूल नाश करने की शक्ति विनयगुण में है, नम्रवृत्ति में है। मेरी आत्मा अनादि कर्म के सम्बन्ध से तुच्छ, क्षुद्र, परवश तथा पराधीन दशा में है ऐसा ज्ञान भी जिन वचन द्वारा होने से जाति कुल, रूप, बल, लाभ, ऐश्वर्यादि कर्मकृत भावों का अभिमान गल जाता है तथा जीव में सच्ची नम्रता आती है। अतः धर्म को सानुबन्ध बनाने वाला नमस्कार भाव है यह वाक्य सत्य सिद्ध होता है। अष्टमद के कारणभूत अष्ट-कर्म, अष्टकर्म के कारणभूत चार कषाय, चार संज्ञा तथा पाँच विषय आदि से भयभीत जीव ही वास्तविक धर्म को प्राप्त करने का पात्र है। धर्म प्राप्त जीवों पर उसकी भक्ति तथा प्रमोद जाग्रत होता है तथा धर्म अप्राप्त जीवों के प्रति करुणा एवं माध्यस्थ्य आता है। इन चार भावों रहित धर्मानुष्ठान में किसी न किसी प्रकार का मद भाव छिपा हुआ है। अतः वह सानुबन्ध धर्म नहीं बनता है। धर्म को सानुबन्ध बनाने हेतु कर्म के विचार के साथ गुणादिकों के प्रति प्रमोद तथा दुःखादिकों के प्रति करुणा आदि भावों की भी उतनी ही आवश्यकता है।

सर्वश्रेष्ठ महामन्त्र

जो तीनों भुवनों के लिए नमस्करणीय बने हैं, वे इसी आत्मदृष्टि भाव के स्पर्श से बने हैं कि उनसे छोटा कोई नहीं है। अतः नमस्करणीयों को किया नमस्कार अपने हृदय में सच्चा नमस्कार भाव लाता है। नमस्कार मन्त्र तभी प्रभावी बनता है जब यह समझा जाता है कि आत्मदृष्टि से अपने से कोई छोटा नही है। ऐसे भावनमस्कार को प्राप्त करके ही जीव मोक्ष गए हैं तथा जा रहे हैं। आत्मदृष्टि से मुझसे कोई छोटा नहीं, क्योंकि सभी आत्मस्वरूप से समान है। देहदृष्टि से मुझे से कोई मोटा नहीं, क्योंकि कर्मकृत भाव सबके लिए समान हैं। कर्मकृत शुभ भी परिणाम दृष्टि से अशुभ अथवा विनश्वर है। कोई छोटा नहीं यह विचार गर्व को रोकता है तथा कोई बड़ा नहीं यह विचार दैन्य को रोकता है। दया धर्म की माता है तथा दान पिता है। माया पाप की माता है तथा मान पिता। दान से मान का नाश होता है तथा दया से माया का नाश होता है। दान में सर्वश्रेष्ठ दान सम्मान का दान है। श्री नमस्कार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्त्र से पंच परमेष्ठियों का सम्मान होता है। अतः वह बड़े से बड़ा दान है, तथा श्री नमस्कार मन्त्र से सभी दुःखी जीवों के दुःख को दूर करने की बुद्धि उत्पन्न होती है। अतः वह बड़ी से बड़ी दया तथा करुणा है। सर्वोत्कृष्ट दया तथा दान से माया तथा मान का नाश करने वाला होने से श्री नमस्कार मन्त्र जीवन में उत्तम परिवर्तन लाने वाला श्रेष्ठ मन्त्र है।

त्रिकरण योग का हेतु

श्री अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु ये सभी सिद्ध अवस्था की पूर्व भूमिकाएँ हैं। इसीलिए वे परमेष्ठि कहलाते हैं तथा उनमें सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं तप की सर्वोत्कृष्ट ~~जहाँ~~ सम्पत्तियाँ बसती हैं। जहाँ चमत्कार से नमस्कार लोभवृत्ति है, नमस्कार से चमत्कार धर्मवृत्ति है। धर्म का मूल नमस्कार है है तथा धर्म का फल चित्त प्रसाद रूपी पुरस्कार है। धर्म का स्वरूप भावविशुद्धि है। नमस्कार का साक्षात् पुरस्कार चित्त प्रसाद है। चित्त प्रसाद का फल "आत्मीय ग्रह मोक्ष" है अर्थात् पौद्गलिक भावों में ममत्व बुद्धि का नाश है। धर्म का कोई भी नियम तीन करण तथा तीन योग से ही पूर्ण बनता है। मन से करवाना तथा अनुमोदन करना विश्वहित चिन्तन के भाव के अन्तर्गत आ जाते हैं। विश्वहित चिन्तन का भाव श्री जिनेश्वरदेव का भाव होने से भव भ्रमण का नियमन करता है। अर्द्धपुद्गल परावर्त से अधिक भव भ्रमण नहीं होता है। ऐसा नियम मात्र ज्ञान या मात्र चारित्र की अपेक्षा नहीं रखता है पर श्री जिन वचन, श्री जिन विचार अथवा श्री जिन वर्तन पर आदर भाव की अपेक्षा रखता है। तीन करण एवं तीन योग पूर्वक होती धर्म क्रिया विश्वहित चिन्तन का वरण करती हुई भव-भ्रमण को परिमित बनाती है। नमस्कार भी धर्म क्रिया है, अतः त्रिकरण योग से करने का विधान है।

सच्ची मानवता

जिससे अधिक उपकार हो उसे नमस्कार करना मानवता है। मनुष्य को प्राप्त मन का वह श्रेष्ठ फल है। अतः उपकारियों को नमस्कार करना परम कर्त्तव्य है। जब अभौतिक चिन्मय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदार्थों से उभयलौकिक उपकार होता है तब भौतिक पदार्थों से होता उपकार केवल एकपक्षीय एवं इहलौकिक ज्ञात होता है अतः अभौतिक पदार्थ प्रथम नमस्कार के पात्र हैं। शास्त्र कहते है कि जो दुःख गिला है वह अपनी अयोग्यता के मुकाबले थोड़ा है ऐसा मानना सीखो एवं जो सुख मिला है वह अपनी योग्यता के मुकाबले अधिक है ऐसा मानना सीखो। पुण्य को दूसरों की सहायता के कारण हुआ मानना सीखो एवं पाप का कारण अपने को मानना सीखो। पाप के प्रति पक्षपात एवं पुण्य के प्रति अरुचि ही समस्त दुःखों का मूल है एवं उसका कारण कार्य कारण भाव के नियम का अविचार अथवा अज्ञान है। कार्य कारण के अनुरूप होता है। पाप परपीडा रूप है। अतः उसका फल दुःख है एवं पुण्य परपीड़ा परिहार रूप है अतः उसका फल सुख है। सच्चा सुख मोक्ष में है। पुण्य पाप से रहित अवस्था में है। जिसको ऊर्ध्वंगमन करना है उसे उच्च पदार्थों को नमस्कार करना सीखना चाहिए। उसी में सच्ची मानवता है। जिस प्रकार नख से अंगुली, बाल से सिर तथा वस्त्र से शरीर अधिक मूल्यवान है, वैसे ही शरीर से आत्मा का मूल्य अधिकतम है, ऐसा मानना सीखना चाहिए। धन ग्यारहवाँ प्राण है; उससे दश द्रव्य प्राणों की अधिकता स्वीकार करनी एवं द्रव्य प्राण से भाव प्राण को विशेषता-अधिकता स्वीकार करने में ही अधिक विवेक है, विचार है एवं सत्य का स्वीकार है। परमेष्ठि नमस्कार में विवेक, विचार तथा सत्य का स्वीकार होने से मानवता की सफलता है।

श्री पंचपरमेष्ठिमय विश्व

श्री अरिहंत पंचपरमेष्ठिमय है। श्री पंचपरमेष्ठि की स्तुति ही श्री अरिहंत की स्तुति है। श्री अरिहंत में अरिहंतपना तो है ही परन्तु उसके अतिरिक्त सिद्धपन भी है। अर्थ की देशना प्रदान करने वाले होने से आचार्यपन भी है। श्री गणधर भगवान् को त्रिपदी रूपी सूत्र का दान करने वाले होने से उपाध्यायपन भी है। कंचनकामिनी के संसर्ग से अलिप्त, निर्विषय-चित्त वाले, निर्मम निःसंग तथा अप्रमत्तभाव वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने से साधुपन भी है। इस प्रकार पाँचों परमेष्ठिमय होने से श्री अरिहंत की स्तुति श्री पंचपरमेष्ठि की स्तुति रूप है एवं श्री पंचपरमेष्ठि की स्तुति श्री अरिहंत की स्तुति रूप है। श्री अरिहंत में पंचपरमेष्ठि तथा श्री पंचपरमेष्ठि में अरिहंत निहित है।

दूसरी प्रकार से श्री अरिहंत विश्व की आत्मा है। समग्र विश्व उनकी आत्मा में ज्ञानरूप, करुणा रूप, मैत्री रूप, प्रमोद रूप एवं माध्यस्थ्य रूप में स्थित है, प्रतिष्ठित है। विश्व श्री अरिहंतरूप है क्योंकि श्री अरिहंतों की करुणा का विषय है, श्री अरिहंतों के ज्ञान का ज्ञेय है तथा श्री अरिहंतों के उपदेश अर्थात् आज्ञा का आलम्बन अथवा क्षेत्र है। इस प्रकार श्री अरिहंत समग्र विश्वमय तथा समग्र विश्व श्री अरिहंतमय है अर्थात् श्री पंचपरमेष्ठि समग्र विश्वमय तथा समग्र विश्व श्री पंचपरमेष्ठिमय है।

श्री पंचपरमेष्ठि का ध्यान

श्री पंचपरमेष्ठि का ध्यान जब शब्द, अर्थ तथा ज्ञान से संकीर्ण होता है तब वह सविकल्प समाधि का कारण बनता है। इस प्रकार जब यह ध्यान देश, काल, जाति आदि से युक्त होता है तब भी यह सविकल्प समाधि बनता है। जब देश, काल, जाति आदि से शून्य केवल अर्थ मात्र निर्भास बनता है तब यदि वह स्थूल विषयक हो तो निर्विचार समाधि रूप बनता है ऐसा श्री पातंजल योग दर्शन में वर्णित है।

स्थूल याने मनुष्यादि पर्यायरूप एवं सूक्ष्म याने शुद्ध आत्मस्वरूप समझना चाहिए। श्री जैन दर्शनानुसार पर्याय-युक्त स्थूल-सूक्ष्म द्रव्य का ध्यान सवितर्क-सविचार तथा पर्याय विनिर्मुक्त स्थूल-सूक्ष्म द्रव्य का ध्यान निर्वितर्क निर्विचार समाधि है अथवा अन्तरात्मा में परमात्मा के गुणों का अभेद आरोप (समापत्ति) ही ध्यान का फल है तथा वह संसर्गारोपसे होता है। संसर्गारोप याने जिसके तात्त्विक अनन्त गुण आविर्भूत हैं उन सिद्धात्माओं के गुणों के विषय में अन्तरात्मा का एकाग्र उपयोग। वह चंचल चित्त वाले को इन्द्रिय निग्रह बिना नहीं होता है। इन्द्रियों का निग्रह श्री जिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमादि तथा सूत्र-स्वाध्यायादि के आलम्बन बिना नहीं होता। अतः तत्त्व की प्राप्ति में सूत्र-स्वाध्याय तथा श्री जिन प्रतिमादि का आलम्बन भी प्रकृष्ट उपकारक हैं इस हेतु 'श्री उपमिति भव-प्रपंच कथा' में कहा गया है कि—

मूलोत्तरगुणाः सर्वे, सर्वा चेयं बहिष्क्रिया।
मुनीनां श्रावकाणां च ध्यानयोगार्थमीरिताः ॥१॥

अर्थ—साधुओं एवं श्रावकों के मूल उत्तरगुण तथा समस्त बाह्य क्रियाएँ ध्यानयोग के लिए वर्णित की गई हैं।

नवकार में भगवद्भक्ति

नवकार में केवल वीरपूजा नहीं; परन्तु भगवद्भक्ति भी भरी हुई है। समस्त जीवलोक का कल्याण करना श्री परमेष्ठि भगवान का स्वभाव रूप बन गया है। उनका यह स्वभाव उनके नाम, आकृति, द्रव्य एवं भाव इन चारों निक्षेपों से आविर्भूत होता है। नवकार के प्रथम पाँच पदों में स्थित पाँचों परमेष्ठि चारों निक्षेपों से तीनों काल में एवं चौदहों लोकों में अपने स्वभाव से ही सब का कल्याण सम्पादन कर रहे हैं। अन्तिम चार पदों में उन श्री को नमस्कार करने वाले चारों गति के सम्यग्दृष्टि एवं मार्गानुसारी जीव, 'ध्याता-ध्येयस्वरूप बनें' इस न्याय के आगम से अर्थात् ज्ञानोपयोग से भावनिक्षेप में श्री पंच परमेष्ठि रूप बनकर सकल पाप के विध्वंसक तथा सकल मंगल के उत्पादक बनते हैं। जो आगम से एवं भावनिक्षेप से श्री अरिहंत आदि स्वयं ही परमेष्ठि हैं एवं आगम से भाव-निक्षेप द्वारा उन श्री के ज्ञाता एवं उन श्री के ध्यान में उपयोगवान ध्याता भी हैं। नमस्कार की चूलिका मिलकर पाँच पद महाश्रुतस्कंध रूप है। इसका अर्थ यह हुआ कि नमस्कार्य, नमस्कर्ता एवं नमस्कार्य में हृदय में ज्ञान तथा करुणा के विषयभूत समस्त जीवलोक श्री नमस्कार महामंत्र रूपी श्रुतस्कंध में समाविष्ट हो जाते हैं। चौदह राज लोक तथा सचराचर सृष्टि को आवृत करता श्री नमस्कार महामंत्र सर्वव्यापक है। समग्र विश्व के साथ विवेकपूर्वक एकतानता तथा एकरसता समायोजित करने हेतु सरल से सरल साधन अर्थभावना पूर्वक होता श्री नमस्कार महामंत्र का स्मरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा रटन है। परमेष्ठि भले ही वे फिर तीनों काल तथा सर्वक्षेत्र के हों पर जाति से एक हैं। अतः एक का प्रभाव सब में है एवं सब का प्रभाव एक में है। एक श्री अरिहंत के स्मरण में सबका स्मरण हो जाता है। तीनों भुवनों में स्थित सारभूत तत्त्व आर्हंत्य एवं उसका स्मरण एक श्री अरिहंत के स्मरण से सम्भव होता है। अतः श्री अरिहंत के स्मरण का प्रभाव अचिन्त्य है। विश्व को शुभ, शुभतर अथवा शुभतम बनाने वाला अथवा अशुभ, अशुभतर अथवा अशुभतम होने से रोकने वाला यदि कोई है तो वह श्री पंच परमेष्ठिमय तत्त्व है। यह निश्चय जैसे जैसे दृढ होता जाता है त्यों-त्यों श्री अरिहंतों का अथवा परमेष्ठियों का स्मरण, भावस्मरण बनकर जीवन का भाव रक्षण करता है। वही मंत्र है जिसका मनन करने से रक्षण हो। अतः नमस्कार के वर्णों से होता श्री परमेष्ठियों का स्मरण महामंत्र स्वरूप बन परम उपकारक होता है।

श्री नमस्कार मंत्र का स्मरण

जो श्री जिनशासन का सार है, जिसको अन्त समय में प्राप्त कर भवसमुद्र तरण किया जाता है तथा जीवन में अनेक पाप आचरित होते हुए भी जिसके स्मरणमात्र से ही जीव सद्गति को प्राप्त करते हैं वही श्री पंचपरमेष्ठि नवकार महामंत्र अचिन्त्य महिमा से भरित है। देवत्व मिलना आसान है, विशाल राज्य, सुन्दरस्त्रियाँ, रत्न की ढेरियाँ अथवा सुवर्णपर्वत मिलने सुलभ हैं पर श्री नवकार मंत्र मिलना तथा उसके प्रति अंतरंग प्रेम जाग्रत होना सब से अधिक दुर्लभ है। अतः प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में उसका स्मरण करने का विधान है। चौदह पूर्व को धारण करने वाले भी अन्त समय में इस महामंत्र का स्मरण करते हैं।

इसके प्रभाव से स्वयंभूरमण सागर से भी बड़ा संसार सागर सुखपूर्वक तिरा जा सकता है तथा मोक्ष के अविचल सुख शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त किए जा सकते हैं। इस महामन्त्र का स्मरण हृदय में अखण्डित रूप से विद्यमान रहे ऐसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनोरथ सम्यक् दृष्टि जीव सदा के लिए वांछित करता है। इस विषय में कहा है कि---

दशमे अधिकारे महामंत्र नवकार।
मनथी नवि मूको शिवसुख फल सहकार,
एह जपतां जाये दुर्गति दोष विकार।
सुपरे ऐ समरो, चौद पूरबनो सार ॥१॥

जन्मान्तर जातां जो पामें नवकार।
तो पातिक गाली, पामें सुरअवतार।
ऐ नवपद सरिखो मंत्र न कोई सार।
इह भव ने परभवे सुख सम्पत्ति दातार ॥२॥

जुओ भील भीलड़ी, राजा राणी थाय।
नव पद महिमाथी राजसिंह महाराय।
राणी रत्नावती बेहु पाम्या छे सुर भोग,
एक भव पछी लेशे शिववधू संजोग ॥३॥

श्रीमती ने ए वली मंत्र फल्यो तत्काल।
फणिधर फीटी ने प्रकट थई फूलमाल,
शिव कुमरे जोगी सोवन पुरिषो कीध।
एम एणे मंत्रे काज घणाना सिद्ध ॥४॥

उपा० श्री विनयविजयजी महाराज
(पुण्य प्रकाश का स्तवन ढाल १०)

। शुभं भवतु सर्वेषाम् ।

***

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महामंत्र की अनुप्रेक्षा

तृतीय किरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रम

१.	महामंत्र की आराधना	१
२.	सच्चा नमस्कार	२
३.	दुष्कृतगर्हा एवं सुकृतानुमोदन एक ही सिक्के के दो पक्ष	३
४.	संसार की विमुखता-मोक्ष की सम्मुखता	३
५.	धर्म प्राप्ति का द्वार	५
६.	पाप का पश्चात्ताप एवं पुण्य का प्रमोद	५
७.	श्री नमस्कारमंत्र की सिद्धि	७
८.	साध्य, साधन एवं साधना	८
९.	आत्मज्ञान एवं निर्भयता	९
१०.	मोहविषापहार का महामंत्र	१०
११.	द्रव्य-भाव संकोच, काया एवं मन की शुद्धि	११
१२.	मार्गदर्शक एवं मार्गरूप	१३
१३.	मंत्र द्वारा मनका रक्षण	१५
१४.	मन को जिताने वाला 'नमो' मंत्र	१६
१५.	'नमो' पद रूपी सेतु	१९
१६.	निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि	१९
१७.	सर्वशिरोमणि मंत्र	२०
१८.	सच्चे मंत्रों का प्रभाव	२१
१९.	मनोगुप्ति एवं नमो मंत्र	२१
२०.	समर्थ की शरण	२३
२१.	श्रद्धा एवं भक्ति	२४
२२.	साध्य एवं साधन में निष्ठा	२६
२३.	ऋणमुक्ति का महामंत्र	२७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४. नम्रता एवं बहुमान २८
२५. आधिकारिकता एवं योग्यता २९
२६. चौदहपूर्व का सार अभेद नमस्कार ३०
२७. द्रव्यगुणपर्याय से नमस्कार ३२
२८. सम्यग्दृष्टि जीवों का त्राण ३३
२९. प्रकाशकज्ञान एवं स्थैर्योत्पादक क्रिया ३४
३०. नम्रता एवं सौम्यभाव ३५
३१. 'नमो' पद से शान्ति, तुष्टि एवं पुष्टि ३७
३२. भावनमस्कार ३८
३३. भावनमस्कार एवं आज्ञायोग ३९
३४. नमस्कार द्वारा ध्यानसिद्धि ४०
३५. मंत्रसिद्धि में लिए अनिवार्यतत्त्व ४१
३६. आत्मा ही नमस्कार है ४२
३७. नमस्कार द्वारा विश्व का प्रभुत्व ४३
३८. पांचों कारणों पर शुभभाव का प्रभुत्व ४५
३९. द्वैत एवं अद्वैत नमस्कार ४६
४०. जपक्रिया दृष्टफला है ४६
४१. स्व पर नियंत्रण प्राप्त करने का महामंत्र ४७
४२. समतासामायिक की सिद्धि ४९
४३. सर्वश्रेष्ठ जपयज्ञ ५०
४४. नमस्कार द्वारा बोधि एवं निरुपसर्ग ५२
४५. नवकार के प्रथम पद का अर्थ ५३
४६. तीनों गुणों की शुद्धि ५४
४७ नमोपद की गम्भीरता ५६
४८. नवकार में अष्टांगयोग ५७
४९. इष्टदेवता को नमस्कार एवं परम्परफल ५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५०. पंचनमस्काररूपी परमधर्म ५६
५१. मंगल, उत्तम एवं शरण की सिद्धि ५६
५२. मंत्रचैतन्य प्रकट करने वाला मंत्र ६०
५३. अनन्तर परम्पर फल ६१
५४. योग्य बनो एवं योग्यता प्राप्त करो ६२
५५. हितैषिता ही विशिष्ट पूजा ६४
५६. नमस्कार धर्म की व्याख्याएँ ६६
५७. नमस्कार का पर्याय—अहिंसा, संयम एवं तप ६७
५८. करुणाभाव का द्योतक ६८
५९. 'नमो' पद का रहस्य ६९
६०. मंगल भावना ७२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुप्रेक्षा

(तृतीय किरण)

महामन्त्र की आराधना

महामन्त्र की आराधना में आराध्य, आराधक, आराधना एवं आराधना का फल इन चार वस्तुओं का ज्ञान आवश्यक है।

१. आराध्य—नवकार

२. आराधक—समिति-गुप्तियुक्त जीव

३. आराधना—मन, वचन एवं काया की शुद्धि तथा एकाग्रता-पूर्वक होता जाप

४. आराधना का फल-इहलौकिक—अर्थ, काम, आरोग्य, अभि-रति पारलौकिक-स्वर्गापवर्ग के सुख।

परमेष्ठि कृपा के बिना पवित्र गुणों की सिद्धि नहीं होती है। नवकार के जाप से परमपद स्थित पुरुषों का अनुग्रह प्राप्त होता है जिससे जीवन में संयम आदि गुणों की सिद्धि होती है। 'नमो' पद शरण-गमन रूप है। दुष्कृतगर्हा एवं सुकृतानु-मोदना ये दोनों ही शरण-गमन रूप एक ही ढाल की दो बाजुएँ हैं। दुष्कृतगर्हा से पाप का मूल जलता है एवं सुकृतानुमोदन से धर्म का मूल सिंचित होता है। 'नमो' पद स्वापकर्ष का बोधक है। अतः इससे दुष्कृतगर्हा होती है। 'नमो' पद नमस्कार्य के उत्कर्ष का बोधक है। अतः इससे सुकृतानुमोदन होता है। स्वापकर्ष की स्वीकृति से पाप का प्रायश्चित होता है एवं परोत्कर्ष के बोध से विनय गुण पुष्ट होता है जो धर्म का मूल है। इस प्रकार एक नमस्कार में जीव की शुद्धि के लिए तीनों प्रकार की सामग्री निहित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सच्चा नमस्कार

शरणगमन नगद नारायण है। दुष्कृतगर्हा एवं सुकृतानुमोदना दोनों ही शरण गमन रूप एक ही सिक्के की दो बाजुएँ हैं। दुष्कृत से जब भय होता है तभी दोष रहित की शरण स्वीकार करने की मनोवृत्ति होती है। जब सुकृत के प्रति अनुराग जाग्रत होता है तभी सुकृत के भण्डार श्री अरिहन्तादि की शरण-चाह उत्पन्न होती है। श्री अरिहन्तादि का नमस्कार दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन का परिणाम है। इसी से वह एक ओर तो सहजमल का ह्रास करता है वहाँ दूसरी ओर जीव की भव्यत्व भावना का विकास करता है।

जब दोषापहार की भावना से तथा गुण प्राप्ति के लक्ष्य से सर्व दोषों से रहित एवं सर्व गुणों से युक्त की शरण स्वीकार होती है तभी नमस्कार सार्थक बनता है।

पाप नाशक एवं मंगलोत्पादक-नवकार की चूलिका में कहा गया है कि नवकार पाप नाशक एवं मंगल का मूल है। सहजमल घटने से पाप का नाश होता है तथा भव्यत्व परिपक्व होने से मंगल की वृद्धि होती है। सहजमल घटने से भव्यत्व परिपक्व होता है एवं भव्यत्व परिपक्व होने से सहजमल घटता है। इस प्रकार एक दूसरे का परस्पर सम्बन्ध है। नमस्कार में दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन निहित है। दुष्कृतगर्हा से सहजमल घटता है तथा सुकृतानुमोदन से भव्यत्व परिपक्व होता है। सुकृत की सच्ची अनुमोदना दुष्कृतगर्हा में तथा दुष्कृत की सच्ची गर्हा सुकृत की अनुमोदना में निहित है। दोनों मिलकर शरण रूप सिक्का बनता है। शरणरूपी सिक्के का दूसरा नाम नमस्कार भाव है। उसका साधन यह पंचमंगल का उच्चारण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुष्कृतगर्हा एवं सुकृतानुमोदन एक ही सिक्के के दो पक्ष

जीव की कर्म के सम्बन्ध में आने वाली शक्ति सहजमल एवं कर्म सम्बन्ध से मुक्त होने वाली शक्ति तथा-भव्यत्व कहलाती है। योग्य को नमन नहीं करने से तथा अयोग्य को नमन करने से सहजमल बढ़ता है। इसके ठीक विपरीत योग्य को नमन करने से तथा अयोग्य को नमन नहीं करने से तथा-भव्यत्व विकसित होता है। योग्य को नमन करने तथा अयोग्य को नमन नहीं करने का ही अर्थ सच्चा नमस्कार है। सच्चे नमस्कार का अर्थ है योग्य की शरण में जाना तथा अयोग्य की शरण में नहीं जाना। :अयोग्य को नमन नहीं करने का अर्थ अयोग्य की शरण का अस्वीकार है। योग्य को नमन करने का अर्थ योग्य की शरण का स्वीकरण है। अयोग्य की शरण में नहीं जाने का नाम ही दुष्कृतगर्हा है तथा योग्य की शरण में जाना ही सुकृतानुमोदन है। ये दोनों शरणागमन रूप सिक्के की दो बाजुएँ हैं। श्री अरिहंतादि के प्रति नमस्कार श्री जिन शासनरूपी साम्राज्य का नगद नारायण है। इस नगद नारायण (मुद्रा) के एक तरफ दुष्कृतगर्हा की तथा दूसरी तरफ सुकृतानुमोदन की छाप है। नमस्कार, दुष्कृतगर्हा तथा सुकृतानुमोदन—ये तीनों समन्वित होकर भव्यत्व परिपाक के उपाय बनते हैं।

संसार की विमुखता—मोक्ष की सम्मुखता

सहजमल जीव को संसार की तरफ तो तथा-भव्यत्व मुक्ति की ओर खींचता है। सहजमल के ह्रास से पाप के मूलों का नाश होता है तथा उसकी सिद्धि दुष्कृतगर्हा से होती है। तथा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भव्यत्व के विकास से धर्म के मूल का अभिसिंचन होता है तथा उसकी सिद्धि सुकृतानुमोदन से होती है।

श्री अरिहंतादि का नमस्कार जीव को संसार तथा उसके कारणों से विमुख कर मुक्ति तथा उसके कारणों के अभिमुख करता है। श्री अरिहंतादि की शरणयुक्त नमस्कार क्रिया संसार से विमुख कर मोक्ष की सम्मुखता साधित करती है। अतः यह नमस्कार क्रिया बारम्बार करणीय है।

विषयों को नमन करने से सहजमल का बल बढ़ता है। परमेष्ठियों को नमन करने से तथा-भव्यत्व भाव विकसित होता है। परमेष्ठि तथा विषय दोनों ही पाँच हैं। नमने का अर्थ है शरणगमन। पाँच विषयों की शरण जाने से चारों कषाय पुष्ट होते हैं। पंच परमेष्ठियों की शरण जाने से ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा तप, आत्मा के चार मूलगुण पुष्ट होते हैं। पुष्टि प्राप्त चारों कषाय चार गति रूप संसार का परिवर्द्धन करते हैं। पुष्टि प्राप्त ज्ञानादि चारों गुण चारों गतियों का उच्छेदन करते हैं। चारों गतियों के कारण चारों कषाय हैं। ज्ञानादि गुणों तथा दानादि धर्मों द्वारा चारों प्रकार के कषायों का उच्छेदन होता है।

सम्यक्दर्शनगुण क्रोध-कषाय का, सम्यक्ज्ञानगुण मान कषाय का, सम्यक्चारित्रगुण माया कषाय का तथा सम्यक्तप-गुण लोभ कषाय का निग्रह करते हैं। दान धर्म द्वारा मान त्यक्त होता है एवं नम्रता गृहीत होती है, शील धर्म द्वारा माया त्यक्त होती है एवं सरलता गृहीत होती है, तपोधर्म द्वारा लोभ जीता जाता है एवं सन्तोष आता है तथा भावधर्म द्वारा क्रोध जीता जाता है तथा सहनशीलता आती है इन चारों प्रकार के धर्मों के द्वारा एवं चारों गुणों की पुष्टि द्वारा चारों गतियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा उनके मूल चारों कषायों का अन्त कर परमेष्ठि नमस्कार पंचम गति को प्रदान करता है।

धर्म प्राप्ति का द्वार

संसार असार है। उसमें निहित दुःख को तो सभी कोई असार मानते हैं पर ज्ञानी पुरुष संसार के सुख को भी असार मानते हैं। इसका कारण यह है कि सुख के लिए पाप होता है तथा पाप के परिणाम स्वरूप दुःख मिलता है। अतः दुःख नहीं पर पाप असार है तथा सुख सार नहीं पर उसका कारण पुण्य ही सार है—ऐसी बुद्धि वाले को ही श्री अरिहंतादि की शरण प्रिय लगती है।

भगवान की शरण स्वीकार करने हेतु मुख्य दो ही उपाय हैं–एक तो पाप को–दुष्कृत को असार मानना एवं दूसरा धर्म को–सुकृत को सार मानना। ऐसी मान्यता वाला ही सर्वथा पापरहित तथा धर्मसहित श्री अरिहंतादि चार का माहात्म्य समझ सकता है एवं उनको भाव पूर्वक नमस्कार कर सकता है।

जिस प्रकार सोने के आभूषणों में सोना ही मुख्य कारण है वैसे ही अर्थ, काम एवं मोक्ष प्राप्ति में धर्म ही मुख्य कारण है।

अर्थ, काम तथा मोक्ष सभी धर्म रूपी सुवर्ण के भिन्न-भिन्न रूप हैं। नमस्कार भाव से उस धर्म के प्रति प्रेम जाग्रत होता है। अतः परमेष्ठि नमस्कार धर्म प्राप्ति का द्वार है।

पाप का पश्चात्ताप एवं पुण्य का प्रमोद

पाप कार्य कर जिसको वास्तविक पश्चात्ताप हो उसका पाप बढ़ने से रुक जाता है। धर्म कार्य कर जिसको हर्ष नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो उसका पुण्य बढ़ने से रुक जाता है। पाप का पश्चात्ताप पाप से परावर्तित होने का साधन है । पुण्य का प्रमोद ही पुण्य की दिशा में आगे बढ़ने का उपाय है। श्री नमस्कार मंत्र में पाप का पश्चात्ताप है एवं पुण्य का प्रमोद है। पाप का पश्चात्ताप दुष्कृतगर्हा का ही दूसरा नाम है। पुण्य का प्रमोद ही सुकृतानुमोदन का पर्याय शब्द है।

श्री नमस्कार मंत्र की आराधना पाप से परावर्तित होने एवं पुण्य की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करती है। इसी से पाप निरनुबन्ध तथा पुण्य सानुबन्ध होता है। पुण्यानुबन्धी पुण्य के अर्थी तथा पापानुबन्ध से भीरु प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा के लिए नित्य एक सौ आठ बार श्री नमस्कार मन्त्र का स्मरण अद्यावधि अप्राप्त नई आध्यात्मिक दुनिया में प्रवेश करने का प्रबल साधन बनता है।

सीधे मार्ग पर चलना इतना कठिन नहीं जितना कठिन मार्ग पर चढ़ना। श्री नमस्कार महामन्त्र जीव को अध्यात्म के मार्ग पर आरूढ़ करता है। शुद्ध अध्यात्म के मार्ग पर अधिरोहण के पश्चात् जीव यथाशक्ति उस मार्ग पर चलने का प्रयास करता है तथा शीघ्र या विलम्ब से अपने इष्ट स्थान पर पहुँच जाता है। शुद्ध अध्यात्म ही पापरहित होने का मार्ग है। पुण्य के उस पार भी उसी से पहुँचा जा सकता है।

श्री नमस्कार मन्त्र दुष्कृतगर्हा रूप होने से जीव को पापरहित तथा सुकृतानुमोदन रूप होने से जीव को पुण्यानुबन्धी पुण्यवाला बनाता है। श्री नमस्कार मन्त्र अरिहंतादि चार की शरण रूप होने से आत्मा के शुद्ध स्वरूप का प्रकाशक होता है। श्री अरिहंतादि चार आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त होने से उसका आलम्बन शुद्ध स्परूप का ज्ञान तथा श्रद्धायुक्त करवाता है तथा उसी ज्ञान एवं श्रद्धा के अनुसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा के शुद्ध स्वरूप का ध्यान भी करवाता है। शुद्ध स्वरूप का ध्यान ही अन्त में मुक्ति प्रदान करवाता है।

श्री नमस्कार मन्त्र की सिद्धि

बहुत से लोग शारीरिक दुःख को ही दुःख मानते हैं। बहुत से उससे आगे बढ़कर मानसिक दुःखों को दुःख मानते हैं। उससे भी दो कदम आगे बढ़कर अनेकों जन शारीरिक तथा मानसिक दुःखों की मूल वासना, ममता या तृष्णा ही को दुःख मानकर उनके निवारण हेतु प्रयत्न करते हैं। ममता संकुचित न होकर जब व्यापक बनती है तब समता अपने आप आती है। दोनों के मूल में स्नेह तत्त्व है। जब स्नेह संकीर्ण-संकीर्णतर हो तभी वह ममता कहलाता है। जब वह व्यापक तथा परिपूर्ण बनता है तब समता कहलाता है। संकीर्ण स्नेह ही ममता है। उसमें से जो वासना या तृष्णा उत्पन्न होती है वही वासना आन्तर तथा बाह्य सभी प्रकार के दुःखों का मूल है। मनुष्य घर, हाट या वस्त्र के कचरे या मैल को दूर करने में तत्पर रहता है। इसी प्रकार अनाज एवं भोजन के कचरे को अप्रमत्त-भाव से दूर करता है पर वह मात्र मन के या आत्मा के ममता रूपी मैल या तृष्णा तथा वासनारूपी कचरे को निकालने हेतु तत्परता नहीं दिखाता है। यह तत्परता शास्त्राभ्यास तथा तत्त्वचिन्तन से आती है। शास्त्राभ्यास तथा तत्त्वचिन्तन का बीज श्री नमस्कार मन्त्र है।

श्री नमस्कार मन्त्र के सतत स्मरण तथा चिन्तन से शास्त्राभ्यास के प्रति आदर जाग्रत होता है। शास्त्राभ्यास के प्रति आदर जाग्रत होने से शास्त्रकार के प्रति आदर जाग्रत होता है, बहुमान उत्पन्न होता है। शास्त्रकार के प्रति बहुमान उत्पन्न होने से तत्त्वचिन्तन गहरा होता है। तत्त्वचिन्तन गहरा होने से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह समझा जाता है कि वासना, तृष्णा तथा ममता के मूल में स्नेह की संकीर्णता है। जब जीव को यह अवगति होती है कि स्नेह की संकीर्णता ही ममतादि सभी दोषों का मूल है तभी वह उसे निष्कासित करने हेतु उपाय ढूंढता है इस उपायान्वेषण के समय उसे श्री नमस्कार मन्त्र पर सर्वाधिक आदर उत्पन्न होता है। श्री नमस्कार मन्त्र पर अधिक आदर भाव रखने से समस्त जीवराशियों पर स्नेह का परिणाम व्याप्त हो जाता है। संकीर्ण ममता या वासना का कारण संकीर्ण स्नेह जब व्यापक तथा पूर्ण बनता है तभी वह समता का हेतु बनता है। जब यह समझा जाता है कि समता की सिद्धि का उपाय स्नेह की व्यापकता है तथा स्नेह की व्यापकता का उपाय निष्काम भावयुक्त, स्नेह पूर्ण श्री पंचपरमेष्ठि का नमस्कार है तभी नमस्कार मन्त्र की सिद्धि मानी जाती है।

साध्य, साधन एवं साधना

यह सत्य है, मनुष्य मात्र में थोड़ी बहुत मात्रा में वासना तथा इच्छा रूप निर्बलता विद्यमान है पर इस निर्बलता पर विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य भी उसमें विद्यमान है। मनुष्यमात्र में उच्चगुणों के बीज सुप्त रूप में पड़े हुए रहते हैं। जब वह सर्वोत्कृष्ट गुणी की शरण में जाता है तब वे बीज अंकुरित हो जाते हैं। जब तक वह सर्वोत्कृष्ट की शरण स्वीकार नहीं करता तब तक उसके अन्तर्हित बीज अंकुरित, पल्लवित तथा फलान्वित नहीं हो सकते हैं।

सिद्ध होना अर्थात् पूर्णत्व प्राप्त करना ही अन्तिम ध्येय है। इस ध्येय एवं आदर्श को सिद्ध करने हेतु हृदय में श्री पंचपरमेष्ठि का ध्यान आवश्यक है। श्री नमस्कार मन्त्र के स्मरण द्वारा इस ध्यान को स्थायी बनाया जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस प्रकार रोग के भय से लोग मिष्ठान्न भोजनादि का त्याग करते हैं वैसे ही जब दुर्गति का भय व्याप्त होता है तो पाप-व्यापार स्वतः रुक जाते हैं। रोगावस्था में भोजन करने से रोग बढ़ता ही है यह ध्रुव नियम नहीं; पर यह तो सर्वांशतः सत्य है कि पाप की निरन्तरता से दुर्गति अवश्यंभावी है। अहंभावपूर्वक की गई स्वार्थ-साधना जीव को अधोगामी बनाती है। नमस्कारभावपूर्वक की गई परमार्थ-साधना जीव को ऊर्ध्वगामी बनाती है। नमस्कारभाव द्वारा ही अहंभाव को पृथक् किया जा सकता है।

नमस्कार भाव में साध्य, साधन एवं साधना तीनों की शुद्धि निहित है। 'नमो अरिहंताणं' में साधन है, अरिहं साध्य है एवं 'ताणं'—तन्मयता-साधना है। प्रथम साध्य को लक्षित करना 'नमो' पद से सम्भव है एवं साध्य को प्राप्त करना 'ताणं' पद से सम्भव है। 'नमो' पद द्वारा साध्य का सम्यक् योग होता है, 'अरिहं' पद द्वारा साध्य का सम्यक् साधन होता है एवं 'ताणं' पद द्वारा साध्य की सम्यक् सिद्धि होती है।

आत्म-ज्ञान एवं निर्भयता

श्री अरिहंतादि पंचपरमेष्ठि के अतिरिक्त सभी प्राणी सभय हैं। ये पांच पद सदैव निर्भय हैं। इसका कारण है उनकी "सकल-तत्त्व-हिताशयता।" सभय को निर्भय बनने हेतु सर्वत्र हित चिन्तन रूप मैत्री भाव का एवं इस भाव से भरित श्री पंचपरमेष्ठि का अवलम्बन है। इस अवलम्बन से भयमुक्ति हो निर्भयता प्रकट होती है। श्री परमेष्ठियों का आलम्बन आत्म-ज्ञान का कारणभूत बनता है। आत्मज्ञान का अर्थ यह ज्ञान है कि मैं आत्मा हूँ, मैं देहादि से भिन्न आत्मस्वरूप हूँ। जरा मरण आदि का भय देह को होता है, आत्मा को नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा अजर-अमर अविनाशी है—ऐसा स्वसंवेद्य ज्ञान परमेष्ठियों की भक्ति के प्रभाव से प्रकट होता है। आत्म-ज्ञानियों की भक्ति आत्मज्ञान प्रकट करती है। पांचों परमेष्ठि आत्मज्ञानी हैं। अतः उनका आलम्बन आत्मस्वरूप का ज्ञान प्रदान करने में पुष्ट-आलम्बन बनता है। प्राप्य वस्तु जिसमें हो उसका आलम्बन पुष्टावलम्बन गिना जाता है। श्री परमेष्ठियों का आलम्बन आत्मज्ञान एवं निर्भयता दोनों के लिए पुष्टावलम्बन है।

मोहविषापहार का महामन्त्र

सांप का जहर चढ़ने से जिस प्रकार नीम कड़वा होते हुए भी मीठा लगता है वैसे ही मोहरूपी सर्प का जहर चढ़ने से कड़वे विपाकों को प्रदान करने वाले विषय-कषाय के कड़वे रस भी मीठे लगते हैं। सर्प का जहर उतरने के बाद कड़वा नीम कड़वा लगता है वैसे ही मोहरूपी सर्प का जहर उतरने के बाद विषय-कषाय भी कड़वे लगते हैं। जिस प्रकार सर्प के विष को उतारने का मन्त्र होता है, वैसे ही मोहरूपी सर्प के विषय को उतारने के लिए भी मन्त्र है एवं वह देवगुरु का ध्यान है। देवगुरु का ध्यान करने का मन्त्र श्री नवकार मन्त्र है। अतः वह मोह-विष उतारने का महामन्त्र गिना जाता है।

अविरति, प्रमाद, कषाय एवं योग कर्म बंध के कारण हैं तथा उसका अनुबन्धक है मिथ्यात्व। श्री नमस्कार मंत्र के आराधन से देवगुरु के ध्यान द्वारा कर्म का अनुबन्ध टूट जाता है एवं मिथ्यात्व मोह विलीन हो जाता है।

चारों गति के भिन्न-भिन्न कार्य हैं। सुख भोगने के लिए स्वर्ग, दुःख भोगने के लिए नरक, अविवेकी व्यवहार के लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिर्यंच एवं विवेक सहित धर्माराधन के लिए मनुष्यभव है। श्री जिनोक्त धर्म में तीन शक्तियाँ हैं जो आने वाले कर्मों को रोकती हैं, पुराने कर्मों को खपाती हैं तथा हितकारी परिणाम वाले शुभास्रव सम्पादित कराती हैं।

मिथ्यात्वमोह की उपस्थिति में दूसरे कर्मों का क्षयोपशम अधिक पाप-कर्म करवाता है। मन्द-मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व की उपस्थिति में सभी क्षयोपशम लाभदायक होते हैं। कर्मकृत अवस्था का नाम ही संसार है एवं उसे टालने का उपाय ही धर्म है। मनुष्यभव में सम्यक्त्व या मंद-मिथ्यात्व की उपस्थिति में उस धर्म का साधन सम्भव है। देवगुरु की भक्ति ही मिथ्यात्व को मन्द करने का एवं सम्यक्त्व की प्राप्ति का अमोघ उपाय है। उस भक्ति को करने का प्रथम एवं सरल साधन श्री नमस्कार-मन्त्र का स्मरण एवं जाप है।

मानव जन्म में धर्म की आराधना करने के जो उत्तम अवसर मिलते हैं उनका लाभ लेने की जिसको तीव्र उत्कंठा है उसके लिए श्री नमस्कार मन्त्र एक जड़ी-बूटी के समान है।

द्रव्य-भावसंकोच--काया एवं मन की शुद्धि

वन्दन, नमस्कार, अभिवादन, करयोजन, अंग-नमन शिरोवन्दन आदि नमस्कार रूप हैं। वे द्रव्य-भाव दोनों संकोच रूप हैं, अभिवादन भाव-संकोच है। उसका अर्थ है प्रत्यक्ष एवं परोक्ष गुणी के गुणों की प्रशंसा तथा उन गुणों के प्रति विशुद्ध मन की वृत्ति अर्थात् मन की विशुद्ध वृत्ति। इस प्रकार काया की एवं वचन की विशुद्ध प्रवृत्ति तथा मन की विशुद्ध वृत्ति मिलकर वन्दन पदार्थ बनता है अर्थात् मन-वचन-काया की विशुद्ध प्रवृत्ति का ही दूसरा नाम वन्दन है एवं उसे ही द्रव्य-भाव संकोच भी कहा जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंत्रोच्चारण में शब्द द्वारा द्रव्य संकोच होता है एवं शब्दवाच्य-अर्थ के चिन्तन द्वारा भाव-संकोच होता है।

द्रव्य-संकोच का अर्थ है देह एवं उसके अवयवों का नियमन एवं भाव-संकोच का अर्थ है मन एवं उसकी वृत्तियों की निर्मलता।

महामंत्र के वाच्य श्री परमेष्ठि भगवन्तों का स्मरण देव-गुरु का स्मरण करवाता है एवं देवगुरु का स्मरण आत्मा के शुद्ध स्वरूप का स्मरण करवाता है। इस प्रकार वह शुद्ध स्वरूप का स्मरण एवं अशुद्ध स्वरूप का विस्मरण करवा कर देवगुरू के शुद्ध स्वरूप के साथ आत्मा की एकता का ज्ञान करवाता है। दूसरे प्रकार से मंत्र के पवित्र अक्षर प्राणों की शुद्धि करते हैं। शुद्ध प्राण मन को एवं मन द्वारा आत्मा को शुद्ध करते हैं।

मंत्र के शब्दों में जिस प्रकार प्राण एवं मन द्वारा आत्मा को शुद्ध करने की शक्ति है, वैसे ही स्वयं के वाच्यार्थ द्वारा आत्मा को निर्मल करने की सूक्ष्म शक्ति भी निहित है।

मंत्र के वर्ण शब्दों की रचना करते हैं, एवं शब्द उसको वाच्यार्थ से सम्बन्धित कर मानसिक शुद्धि करते हैं। वाचक के प्रणिधान द्वारा सम्पन्न होती शुद्धि स्थल एवं द्रव्य शुद्धि है। वाच्य के प्रणिधान द्वारा होती शुद्धि ही सूक्ष्म एवं भावशुद्धि है।

मंत्र के पद एवं उसके वाच्यार्थ का सतत रटन एवं स्मरण करते रहने से बाह्यान्तर-शुद्धि के साथ नित्य नये ज्ञान का प्रकाश मिलता है, अर्थात् मोहनीय कर्म के ह्रास के साथ ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का भी ह्रास होता है एवं अन्त में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कैवल्य की प्राप्ति भी सुलभ बनती है। कहा गया है कि:-

'मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च कैवल्यम्।'

श्री तत्त्वार्थसूत्र अ १०-१.

मार्ग--दर्शक एवं मार्ग रूप

प्रभु मार्ग-दर्शक एवं मार्ग रूप भी हैं। जिस प्रकार भूतकाल में मार्ग बताकर वे उपकार कर चुके हैं वैसे ही वर्तमान काल में दर्शन-पूजनादि द्वारा एवं तज्जन्य शुभभावादि द्वारा मार्ग रूप बनकर वे उपकार कर रहे हैं।

प्रभु के दर्शनादि से रत्नत्रयी रूप मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति होती है। उसमें प्रभु निमित्तकर्त्ता है एवं शुभ भाव प्राप्त करने वाला जीव उपादानकर्त्ता है।

नामादि द्वारा प्रभु के आलम्बन से मोहनीय आदि कर्म का क्षय क्षयोपशम होता है एवं जीव को शुभ भाव रूपी रत्न-त्रयी की प्राप्ति होती है। वही मार्ग है एवं उसे प्रदान करने वाले वे ही प्रभु हैं।

शुभ भाव ही मार्ग अथवा तीर्थ है। उसे जो प्रशस्त करे वह तीर्थंकर कहलाता है। व्यवहार से तीर्थ के कर्त्ता श्री तीर्थंकर परमात्मा कहलाते हैं। वह तीर्थ दो प्रकार का है। द्वादशांगी एवं उसके रचयिता प्रथम गणधर तथा श्रीसंघ बाह्य तीर्थ है। शुभ भाव अभ्यन्तर तीर्थ है। उसके भी प्रयोजनकर्त्ता, निमित्ताकर्ता एवं प्रेरणादाता परमात्मा हैं। अतः उनकी भक्ति निरन्तर करनी चाहिये। नवकार मंत्र के प्रथम पद से वह भक्ति हो सकती है। जो श्री अरिहन्त भगवान को उनके शुद्ध आत्मद्रव्य से, शुद्ध केवल-ज्ञान गुण से एवं शुद्ध स्वभाव-परिणमन रूपी पर्याय से जानता है वही आत्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को निश्चय रूप से जान सकता है। कहा है कि:—

जेह ध्यान अरिहन्त को,
सो ही आतम ध्यान,
फेर कुछ इणमें नहिं,
एहिज परम विधान,
एम विचार हियड़े धरी,
समकित दृष्टि जेह,
सावधान निज रूप में,
मगन रहे नित्य तेह, ।

—मरणसमाधिविचारगाथा २२५-२२६.

"द्रव्यतया परमात्मा एवं जीवात्मा"
"द्वात्रिंशद्-द्वात्रिंशिका टीका"

द्रव्य से स्वयं परमात्मा ही जीवात्मा है। शुद्ध द्रव्य, गुण एवं पर्याय से श्री अरिहंत का ज्ञान होने से तदनुसार उनका ध्यान होता है। वह ध्यान समापत्तिजनक ध्यान बनकर मोह का नाश करता है।समापत्ति का अर्थ है ध्यानजनित स्पर्शना अर्थात् ध्यान काल में ध्याता को होती हुई ध्येय की स्पर्शना। वह दो प्रकार से होती है—एक संसर्गारोप से एवं दूसरी अभेदारोप से।

शुद्धात्मा के ध्यान से अन्तरात्मा के प्रति परमात्मा के गुण का संसर्गारोप होता है। यह प्रथम समापत्ति है। इसके पश्चात् अन्तरात्मा में परमात्मा का अभेद-आरोप होता है। यह दूसरी समापत्ति है। उसका फल बहुत विशुद्ध समाधि है।

श्री नमस्कार मंत्र दोनों प्रकार की समाधि का कारण बनकर साधक को विशुद्ध समाधि देने वाला है। अतः उसका बार-बार स्मरण करना चाहिए, ध्यान करना चाहिए एवं उसका पुनः पुनः ध्यान करना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंत्र द्वारा मन का रक्षण

मंत्र शब्द मन के साथ गाढ़ सम्बन्ध रखता है। मन एवं प्राणों के बीच अविनाभाव सम्बन्ध है। मन का स्पन्दन प्राणों को स्पन्दित करता है और प्राणों का स्पन्दन मन को चकित करता है।

"यत्र मनस्तत्र मरुत्, यत्र मरुत्तत्र मनः"

मनुष्य की वाणी एवं वर्तन भी मन की स्थिति का ही प्रतिबिम्ब है। अतः मन को ही शास्त्रों में बन्ध एवं मोक्ष का कारण कहा गया है। शरीर से जो कुछ काम होते दिखाई देते हैं उनका पूर्ववर्ती प्रेरणा-बल मनुष्य के मन में ही स्थित रहता है। मन शुद्धि पर ही मनुष्य की शुद्धि निर्भर है।

बाह्य जगत के कार्य इन्द्रियों द्वारा होते दिखाई देते हैं पर वास्तव में तो ये समस्त क्रियाएं मस्तिष्क में स्थित मन के विविध केन्द्रों द्वारा ही सम्पादित होती हैं। इन्द्रियाँ तो उसके बाह्य करण हैं। अंहकार, बुद्धि, चित्त, मन आदि आन्तर-करण हैं। इन आन्तर करणों के द्वारा ही प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम आदि प्रमाणों का बोध होता है। निद्रा, स्वप्न, स्मृति एवं मिथ्याज्ञान भी अन्तःकरणों द्वारा ही होते हैं। जाग्रत, स्वप्न एवं निद्रा के उपरान्त एक चौथी अवस्था भी है। जिसे तुरीयावस्था (उजागर दशा) कहते हैं। उस अवस्था में ही जीव को आत्म प्रत्यक्ष या आत्मसाक्षात्कार होता है। मन को इस अवस्था के लिए तैयार करने का अमूल्य साधन मंत्र है। मंत्र द्वारा मन एकाग्र होता है, शुद्ध बनता है एवं अन्तर्मुख बनता है। एकाग्र, शुद्ध एवं अन्तर्मुख बने हुए मन में विवेक, वैराग्य जागता है उसके पश्चात् शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा एवं समाधान प्राप्त होते हैं एवं उनसे अध्यात्म मार्ग की यात्रा अग्रसर होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंत्र का प्रधान कार्य मनुष्य की रक्षा करना है। आधि, व्याधि एवं उपाधि--इन तीनों से मंत्र रक्षण करता है। मनुष्य के मन की निरर्थक चिन्ताओं को मंत्र-साधना छुड़ाती है एवं मनुष्य-शरीर को चिन्ता एवं विषाद से उत्पन्न होते अनेक शारीरिक रोगों से बचाती है। यही मंत्र-साधना प्रारब्ध-योग से आने वाले बाह्य संकट तथा अनिवार्य प्रत्यवाय-विघ्नादि के समय मन को शान्त रख उनसे दूर होने के मार्गों को ढूंढ निकालने में सहायक होती है।

मंत्र-साधना के परिणामस्वरूप आत्म-साक्षात्कार होने पर उनके सम्पर्क में आने वाली आत्माओं को भी वह सत्य-मार्ग-दर्शन करवाकर अनेक आपत्तियों से उनका उद्धार करवा सकती है। इस प्रकार मंत्र-साधना मनुष्य के सर्वलक्षी आध्यात्मिकविकास में अत्यन्त सहायक बनने वाली होने से अत्यन्त आदरपूर्वक करणीय है।

श्री नवकार मंत्र सभी मंत्रों में शिरोमणि होता है। उसकी साधना में रात दिन लीन मनुष्यों को वह विवेक, वैराग्य एवं अन्तर्मुखिता देने वाला तथा आधि, व्याधि तथा उपाधि से उबारने वाला होता है। इतना ही नहीं मन की पर अवस्था को भी प्रदान करने वाला होता है जिसे तुरीयावस्था कहते हैं। तुरीयावस्था को अमनस्कता, उन्मनीभाव एवं निर्विकल्प चिन्मात्र अवस्था भी कहते हैं। उस अवस्था में अत्यन्त दुर्लभ आत्मज्ञान होता हैं जो सकल क्लेश एवं कर्म से जीव को हमेशा के लिए मुक्ति दिला देता है।

मन को जिताने वाला 'नमो' मंत्र

'नमो' मंत्र द्वारा ही मन को आत्माधीन बनाने की प्रक्रिया साधित होती है। नमो मंत्र का 'न' अक्षर सूर्य वाचक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरा 'म' अक्षर चन्द्रवाचक है।

(कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्र सूरि० कृत एकाक्षरी कोष)

मंत्र शास्त्र में सूर्य को आत्मा एवं चन्द्रमा को मन गिना जाता है इस दृष्टि से 'नमो' पद में प्रथम स्थान आत्मा को प्राप्त होता है एवं मन पद में प्रथम स्थान मन को मिलता है। 'नमो' मंत्र द्वारा संसार परिभ्रमण में परिणमनशील मन का प्रथम स्थान मिट कर आत्मा को प्रथम स्थान मिलता है जिससे संसार-परिभ्रमण का अन्त होता है 'नमो' पद के बारम्बार स्वाध्याय से ऐसा ज्ञान एवं ऐसा बोध होता है कि आत्मा मन का स्वामी है, मन आत्मा का स्वामी नहीं।

'नमो' पद पूर्वक जितने मंत्र हैं वे सब आत्मा को मन की गुलामी से मुक्त कराने वाले होते हैं।

मन कर्म का सर्जन है अर्थात् जिसे कर्मबन्धन से मुक्त होना हो उसे सर्व प्रथम मन की अधीनता से मुक्त होना पड़ेगा। 'नमो' मंत्र मन पर प्रभुत्व एवं प्रकृति पर विजय करवाने वाला मंत्र है।

'नमो' मंत्र आत्माभिमुख करता है। बहिर्मुख मन को आत्माभिमुख करने का सामर्थ्य 'नमो' मंत्र में है।

'नमो' पद का अर्थ आत्मा को मुख्य स्थान देना एवं मन तथा उपलक्षण से वचन, काया, कुटुम्ब, धन आदि को गौण समझना है।

'नमो' पद का विशेष अर्थ आत्मा में ही चित्त, आत्मा में ही मन, आत्माभिमुख लेश्या, आत्मा का ही अध्यवसाय, आत्मा का ही तीव्र अध्यवसाय, आत्मा में ही उपयोग एवं आत्मा में ही तीव्र उपयोग धारण करना है। तीनों कारणों एवं तीनों योगों को आत्म-भावना से ही भावित करना 'नमो' पद का विशिष्ट अर्थ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'नमो' पद केवल नमस्कार रूप नहीं वरन् द्रव्य-भाव संकोच रूप है। द्रव्य, भाव, देह, प्राण, मन एवं बुद्धि से, बाहर से एवं अन्दर से संकुचित होना, साथ ही इन देह, प्राण, मन, बुद्धि आदि सब में चैतन्य का सम्पादन करने वाले आत्मतत्त्व में विलीन होना, निमज्जित होना तथा तन्मय, तत्पर एवं तद्रूप होना ही 'नमो' पद का रहस्यार्थ है।

'नमो' पद के साथ श्री अरिहंत, सिद्ध, साधु आदि पदों को संयुक्त करने से उसका अर्थ एवं आशय भी आत्मा की शुद्ध अवस्थाओं को आगे बढ़ाने का है तथा उन अवस्थाओं द्वारा अवस्थावान शुद्ध आत्मा में परिणति लाकर वहाँ स्थिर करने का है।

जाप का ध्येय है आत्म रूप में अर्थाकार हो जाना। कहा है कि—

'तज्जपस्तदर्थभावनम्'

अर्थात्—मंत्र का जाप मंत्र के अर्थ के साथ भावित होने के लिए है।

अनात्मभाव की तरफ ढलते जीव को आत्म-भाव की तरफ ले जाने का कार्य नमो मंत्र द्वारा साधा जाता है। मन अनात्म-भाव की ओर ढलता है। अतः वह संसार में जीवात्मा को ले जाने के लिए सेतु बनता है। 'नमो' इसके विरुद्ध आत्म भाव में ले जाने हेतु सेतु बनता हे।

'नमो' पद अन्तरात्मभाव का प्रतीक है। अनात्मभाव से आत्मभाव की पूर्णता में ले जाने के लिए 'नमो' मंत्र सेतु का काम करता है।

मन ही संसार है। आत्मा ही मोक्ष है। मन का झुकाव संसार की तरफ से मुड़कर आत्मा की तरफ होना ही मोक्ष मार्ग है एवं वही 'नमो' पद का अभिप्रेत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'नमो' पद रूपी सेतु

'नमो' शब्द अर्द्ध मात्रा स्वरूप है। त्रिमात्र में से अमात्र में ले जाने के लिए अर्द्ध मात्रा सेतु रूप है। कर्मकृत-वैषम्य त्रिमात्र रूप है। धर्मकृत 'नमो' भाव ही अर्द्ध मात्रा रूप है एवं इससे होने वाला पाप का नाश एवं मंगल का आगमन ही अमात्र रूप है। अमात्र का अर्थ है अपरिमित आत्म-स्वरूप। राग, द्वेष एवं मोह ही त्रिमात्र रूप हैं एवं 'नमो' ही अर्द्धमात्र रूप है अथवा औदयिक भाव के धर्म त्रिमात्र रूप हैं। क्षयोपशम भाव के धर्म ही अर्द्धमात्र रूप हैं एवं क्षायिक भाव के धर्म ही अमात्र रूप हैं।

'नमो' मंत्र द्वारा औदयिक भावों के धर्मों का त्याग होकर क्षायिक भाव के धर्म प्राप्त होते हैं एवं वे प्राप्त होने में क्षयोपशम भाव के धर्म सेतु रूप बनते हैं।

'नमो' मंत्र ममत्व भाव का त्याग करवा कर समत्व भाव की ओर ले जाता है अतः वह सेतु रूप है। 'नमो' मंत्र निर्विकल्प पद की प्राप्ति हेतु अशुभ विकल्पों से मुक्त कर शुभ संकल्पों से संयुक्त करने वाला है। इसलिए भी उसकी सेतु की उपमा अन्वर्थक है—सार्थक है।

निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि

मंत्र का अर्थ है गुह्य भाषण। जीवात्मा का परमात्मा के साथ जिन पदों द्वारा गुह्य भाषण हो उन पदों को मंत्र पद कहते हैं। गुह्य भाषण का अर्थ है विना किसी अन्य की साक्षी के मात्र आत्म-साक्षी से आत्मा का परमात्म-भाव रूप में स्वीकार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'सर्वे जीवात्मनः तत्त्वतः परमात्मान एव'।

अर्थात्—"सभी जीवात्मा तत्त्व से परमात्मा हैं", इस प्रकार से स्वयं की आत्मा में ही स्वयं के शुद्ध स्वरूप के मनन को ही मंत्र संज्ञा प्राप्त होती है—'मननान्मंत्रः'। पुनः पुनः इस प्रकार की मंत्रणा–गुह्यकथनी स्वयं के संकुचित स्वरूप का त्याग कर निस्सीम स्वरूप का भान कराती हैं। यह बोध जैसे जैसे दृढ़ होता जाता है वैसे वैसे संकल्प-विकल्प से मुक्ति दिला कर निर्विकल्प अवस्था की प्राप्ति करवाता है। उसे निज शुद्ध स्वरूप की अनुभूति अथवा निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि रूप में पहिचाना जाता है।

'नमो' मंत्र द्वारा यह सब काम शीघ्र होने से वह महामंत्र कहलाता है।

सर्वशिरोमणि मंत्र

शुद्ध आत्म-द्रव्य की अनुभूति मोदक के स्थान है उसका ज्ञान गुड़ के स्थान पर है एवं उसकी श्रद्धा घी के स्थान पर है। शुद्ध आत्मद्रव्यपूर्ण ज्ञान एवं श्रद्धा के साथ होता उसका ध्यान, स्मरण, रटन आदि आटे के स्थान पर है।

शुद्ध आत्म-स्वरूप के लाभ की इच्छा के अतिरिक्त सभी इच्छाओं का जिसमें निरोध है ऐसी तप रूपी अग्नि में आत्म-ध्यान रूपी आटे के रोट बनाकर उन्हें सत्क्रियाओं से कूट कर उसमें श्रद्धा रूपी घी एवं ज्ञान रूपी गुड़ मिलाकर जो मोदक तैयार होता है वही मोक्ष-मोदक है एवं उसमें संसार के सब प्रकार के सुखों के आस्वाद से अनन्तगुणा अधिक सुखास्वाद निहित है।

निश्चयनय से आत्मा के शुद्ध एवं पूर्ण स्वरूप का ज्ञान एवं श्रद्धान तथा व्यवहारनय से शुद्ध स्वरूप में उपयोग रूपी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रणिधान ही मोक्ष रूपी मोदक को प्राप्त करने के सरल उपाय हैं। "नमो अरिहंताणं" पद के ध्यान से-रटन से पुनः पुनः उच्चारण रूपी जाप एवं प्रणिधान-ध्यान से वे सिद्ध हो सकते है। अतः सात अक्षर के इस मंत्र को मोक्ष प्राप्ति के लिए सर्वशिरोमणि मंत्र कहा गया है।

सच्चे मंत्रों का प्रभाव

सच्चे मंत्र देव, गुरु एवं आत्मा के साथ तथा दूसरी तरफ मन, पवन एवं आत्मा के साथ ऐक्य सधवाने वाले होने से वे सभी अन्तरायों का निवारण करवाने वाले तथा अन्तरात्म-भाव की प्राप्ति करवाने वाले होते हैं।

अन्तरात्मभाव का अर्थ है आत्मा में आत्मा द्वारा आत्मा की प्रतीति। उस प्रतीति को करने हेतु अथवा यदि वह हुई हो तो उसे दृढ़ वनाने हेतु सच्चे मंत्र का आराधन परम सहायभूत होता है।

मंत्र के अक्षरों का उच्चारण प्राणों की गति को नियमित करता है। प्राणों की गति की नियमितता मन को नियन्त्रित करती है। मन का नियन्त्रण आत्मा का प्रभुत्व प्रदान करता है। मंत्रों के अर्थों का सम्बन्ध देवतत्त्व एवं गुरुतत्त्व के साथ है। अतः वह देवतत्त्व एवं गुरुतत्त्व का बोध करवाकर शुद्ध आत्मतत्त्व का ज्ञान करवाता है।

मन पर (आत्मा का) प्रभुत्व प्राप्त करवाने की क्रिया से एवं शुद्ध आत्म तत्त्व के ज्ञान से अर्थात् सम्यक् क्रिया, सम्यक् ज्ञान तथा उसकी साधना का अभ्यास करवाने के द्वारा सत्य मंत्र एवं उनकी साधना मोक्ष के असाधारण कारण बनते हैं।

मनोगुप्ति एवं नमो मंत्र

नित्य नमस्कार का अभ्यास भेदभाव की गहरी नदी पर मजबूत पुल बांधने की क्रिया है इसीलिए 'नमो' पद को सेतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा गया है। 'नमो' पद रूपी सेतु का आश्रय लेने से भेदभाव रूपी नदी का उल्लंघन होता है एवं अभेदभाव के किनारे पर पहुँचा जाता है एवं डूब जाने का भय नहीं रहता। भेदभाव को मिटाकर अभेदभाव पर्यन्त पहुँचने का कार्य 'नमो' पद रूपी सेतु की आराधना से होता है। मंत्रशास्त्र में उसे अमात्र पद में पहुँचाने वाली अर्द्धमात्रा भी कहते हैं। आधी मात्रा में समग्र संसार समा जाता है एवं दूसरी आधी मात्रा सेतु बनकर आत्मा को संसार के उस पार ले जाती है तथा संकल्प-विकल्प से मुक्त करवा कर निर्विकल्प अवस्था तक पहुँचाती है।

'नमो' पद द्वारा मनोगुप्ति साध्य बनती है। मनोगुप्ति के लक्षण निर्धारित करते समय कहा गया है :—

"विमुक्तकल्पनाजालं समत्वे सुप्रतिष्ठितम्।
आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैं मनोगुप्तिरुदाहृता" ॥१॥

अर्थात्—'कल्पना जाल से मुक्ति, समत्व में सुस्थिति एवं आत्मभाव में परिणति जिससे हो वह मनोगुप्ति है।'

मनोगुप्ति के लक्षण में प्रथम मन के रक्षण के निषेधात्मक एवं बाद में विधेयात्मक दोनों पहलू बताये गये हैं।

'विमुक्तकल्पनाजालम्' निषेधात्मक पक्ष है एवं 'समत्वे सुप्रतिष्ठितं' तथा 'आत्मारामं मनः' विधेयात्मक पक्ष हैं। श्री नमस्कार मंत्र के जाप में भी दोनों पक्षों का समन्वय है।

जो काम मनोगुप्ति द्वारा साध्य है, वही कार्य 'नमो' मंत्र की आराधना द्वारा सम्भव होता है। अतः मनोगुप्ति एवं नमो मंत्र एक ही कार्य की सिद्धि करने वाले होने से इस अंश में परस्पर पूरक बन जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समर्थ की शरण

नमस्कार, वन्दन अथवा प्रणाम सभी दैन्य - भावना के प्रतीक हैं। जोसर्वऐश्वर्य सम्पन्न हैं एवं सभी का त्राण—रक्षण करने में समर्थ हैं, उनका आश्रय लेने हेतु तथा स्वयं की दीनता एवं साधनहीनता को प्रकट करने हेतु 'नमो' पद का उच्चारण होता है।

जो समर्थ की शरण ग्रहण करता है वही दुस्तर एवं दुरत्यय दुःख से पार हो सकता है एवं दुरन्त संसार की माया से पार पा सकता है। अन्यत्र भी कहा गया है कि —

दैवी ह्येषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया
मामेव प्रतिपद्यन्ते, मायामेतां तरन्ति ते ॥१॥

अर्थात्—'दैवी एवं गुणमयी यह मेरी माया दुरत्यय है। जो मेरी शरण स्वीकार करता है वही इस माया से पार पा सकता है।

वर्षा का जल सर्वत्र गिरता है परन्तु वह निचले भू भाग पर ही टिकता है न कि उत्तुंग पर्वतों पर। इसी प्रकार प्रभु की कृपा सर्वत्र है पर उसकी अभिव्यक्ति वहीं होती है जहां दैन्य एवं विनम्रता है न कि अहंकार अभिमानादि रूप पर्वतीय स्थानों पर।

जीव जब तक दैन्य–श्री से संयुक्त नहीं होता तब तक उसे भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती।

भक्ति, प्रीति, अनुराग अथवा प्रेमसाधना में एक दैन्य की प्रधानता है। कहा है कि :—

पीनोऽहं पापपंकेन, हीनोऽहम् गुणसम्पदा।
दीनोऽहं तावकीनोऽहं मीनोऽहं त्वद्गुणाम्बुधौ ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्षमार्ग में कृपा ही मुख्य है। अकेला स्वयं का बल अथवा स्वयं की साधना वहाँ काम नहीं आती।

नख-कर्तनी से जिस प्रकार पर्वत नहीं भेदा जा सकता पर वह इन्द्र-वज्र से भेदा जाता है वैसे ही पापरूपी पर्वतों को भेदने के लिए भक्तिरूपी वज्र चाहिए। उसकी प्राप्ति नम्रभाव के अधीन है। वह नम्रभाव 'नमो' मन्त्र द्वारा साध्य है।

श्रद्धा एवं भक्ति

श्रद्धा सभी क्रियाओं का मूल है, श्रद्धा का मूल ज्ञान है, ज्ञान का भूल भक्ति है एवं भक्ति के मूल भगवान हैं। भगवान की शक्ति भक्त के हृदय में भक्ति पैदा करती है। भक्ति द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त होता है। वह आत्मज्ञान श्रद्धा को पैदा करता है। श्रद्धा क्रिया में प्रेरक बनती है। अतः श्रद्धा पुरुषतंत्र है एवं भक्ति वस्तुतंत्र है।

भक्ति में प्रेरक वस्तु की विशेषता है। श्रद्धा में प्रेरणीय पुरुष की विशेषता है। निमित्त की विशेषता ही भक्तिप्रेरक है। उपादान की विशेषता श्रद्धाजनक है। भक्ति आराध्य में स्थित आराध्यत्व के ज्ञान की अपेक्षा रखती है। यह श्रद्धा क्रिया एवं उसके फल में विश्वास की अपेक्षा रखती है। यह विश्वास क्रिया करने वाले की योग्यता पर आधार रखता है। जब श्रद्धा एवं भक्ति एक स्थान पर मिलते हैं तब कार्य की सिद्धि होती है।

भगवान के प्रभाव-चिन्तन से भक्ति जाग्रत होती है एवं भक्ति के प्रभाव-चिन्तन से श्रद्धा जागती है।

आज्ञा की आराधना श्रद्धा एवं भक्ति उभय की अपेक्षा रखतो है। आज्ञा पालन के प्रति निष्ठा ही भक्ति है। आज्ञ पालन के प्रति निष्ठा ही श्रद्धा है। भक्ति में आज्ञा-कारक के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामर्थ्य की प्रतीति है। श्रद्धा में आज्ञापालक की योग्यता का भाव है।

प्रयत्न की एकनिष्ठा में भक्त का सामर्थ्य निहित है। भगवान का सामर्थ्य उनकी अचिन्त्य शक्तिमत्ता में निहित है। यदि भगवान में अचिन्त्य सामर्थ्य नहीं हो तो भक्त का प्रयत्न विफल है। यदि भक्त का प्रयत्न न हो तो अचिन्त्य सामर्थ्य भी लाभदायक नहीं होता।

प्रयत्न फलदायी है—ऐसा विश्वास ही श्रद्धा है। कृपा फलदायी है—ऐसा विश्वास ही भक्ति है। कृपा भगवान के सामर्थ्य की सूचिका है। प्रयत्न भक्त की श्रद्धा का सूचक शब्द है। भक्ति के प्रमाण में ही श्रद्धा स्फुरित होती है एवं श्रद्धा के प्रमाण में ही भक्ति फलित होती है।

'चले बिना इष्ट स्थान पर पहुँचा नहीं जा सकता'—यह श्रद्धा सूचक वाक्य है। "इष्ट स्थल पर पहुँचने के लिए ही चलने की क्रिया होती है"—यह भक्ति सूचक वाक्य है।

इष्ट स्थल में यदि इष्टत्व की बुद्धि नहीं हो तो चलने की क्रिया हो ही कैसे सकती है? वैसे ही चलने की क्रिया के बिना इष्ट स्थल पर पहुँचा ही कैसे जा सकता है?

आत्मा महिमाशाली द्रव्य है इसीलिए उसे बताने वाले परमात्मा के प्रति भक्ति जागती है। यह भक्ति क्रिया में निष्ठा उत्पन्न करती है एवं यह निष्ठा प्रयत्न में परिणमित होती है।

श्री नमस्कार मंत्र में श्रद्धा एवं भक्ति दोनों निहित हैं। श्रद्धा नमस्कार की क्रिया पर एवं भक्ति नमस्कार्य के प्रभाव पर अवलम्बित है।

'आराध्यत्वेन ज्ञानं भक्तिः'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात्—"भक्ति एक प्रकार का ज्ञान है" कि जिसमें आराध्यतत्त्व की विशेषता का ग्रहण होता है।

'इदमित्थमेव'। 'अयमेव परमार्थः'

अर्थात्—'यह वस्तु ऐसी ही है अथवा यही एक परमार्थ है' इस प्रकार का ज्ञान श्रद्धा कहलाती है एवं उसमें आराधक की निष्ठा की प्रशंसा है।

साध्य एवं साधन में निष्ठा

श्रद्धा तथा भक्ति का आराधक में होना आवश्यक है फिर भी दोनों में जो अन्तर है वह इनके ज्ञान में है।

श्रद्धालु का ज्ञान साधना में निष्ठा उत्पन्न करता है। भक्तिमान का ज्ञान साध्य में निष्ठा उत्पन्न करता है। साध्य की श्रेष्ठता का ज्ञान भक्तिवर्द्धक बनता है एवं साधना की श्रेष्ठता का ज्ञान श्रद्धावर्द्धक बनता है। श्री नमस्कार मंत्र में साध्य ही सर्वश्रेष्ठ होने से वह सर्वोत्तम भक्ति का उत्पादक है एवं साधन सर्वश्रेष्ठ होने से वह सर्वोत्तम श्रद्धा को उत्पन्न करता है। सर्वोत्तम श्रद्धा एवं सर्वोत्तम भक्ति से सम्पन्न क्रिया निशंक सर्वोत्तम फल को प्रदान करती है।

भक्ति उत्पन्न होने में प्रमुख अनुग्रह प्रभु का है। इस अनुग्रह को करने की शक्ति अन्य किसी में भी नहीं होने से भव्य जीवों के लिए प्रभु ही एक सेव्य, आराध्य एवं उपास्य हैं साथ ही एक उनकी ही आज्ञा पालन करने योग्य होती है ऐसी निष्ठा प्राप्त होती है एवं इसी का नाम भक्ति है। आज्ञा का पालन करने योग्य "मैं स्वयं ही हूँ" ऐसी निष्ठा श्रद्धा है। इस प्रकार श्रद्धा एवं भक्ति दोनों के मिलने से जीव की मुक्तिरूपी कार्य-सिद्धि होती है। श्री नमस्कार मन्त्र इन दोनों वस्तुओं की पूर्ति करने वाला होने से भव्य जीवों को प्राणों से भी प्यारा है एवं प्रत्येक श्वास में सौ बार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संभालने योग्य है। इससे मन का रक्षण होता है, संकल्प विकल्प छूट जाते हैं, समत्वभाव में स्थिति उत्पन्न होती है एवं आत्मारामता या आत्मस्वरूप में ही रमण करने का अभ्यास होता है।

ऋण मुक्ति का महामन्त्र

नमस्कार ऋणमुक्ति का मन्त्र है। अपने पर ऋण है—ऐसा मानने वाला व्यक्ति अपने आप नम्र बनता है एवं निरहंकार रहता है।

प्रत्येक जन्म में दूसरों पर कृत अपकार एवं दूसरों के स्वयं पर हुए उपकारों को याद रखने वाला ही सदा नम्र रहता है एवं उपकार के बदले में प्रत्युपकार करने की भावनावाला रहता है। स्वयंकृत अपकार का बदला समता भाव से सभी प्रकार के कष्ट सहन में निहित है एवं अपने ऊपर हुए उपकार का बदला आत्मज्ञान से चुकता है। आत्मज्ञानी पुरुष विश्व पर जो उपकार करता है, वह इतना बड़ा होता है कि उसके सामने उस पर दूसरों द्वारा किए गए सभी उपकारों का बदला चुक जाता है।

दुःख एवं कष्ट के समय कर्म के विपाक का चिन्तन करने से समता भाव अखण्ड रहता है एवं उससे दूसरों पर किए गए अपकारों का ऋण उतर जाता है।

'नमो' मन्त्र अपकार एवं उपकार दोनों का बदला एक साथ चुका सकता है। उसका कारण उसके पीछे कर्मविपाक का भी विचार है एवं आत्मज्ञान प्राप्त करने का भी विचार है। कर्मविपाक का विचार समता द्वारा सभी पापों का नाश करता है। आत्मज्ञान का विचार सभी मंगलों का कारण बनता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म मात्र मंगल है। आत्मज्ञान सभी धर्मों का फल है। अतः श्री अरिहंतादि के नमस्कार द्वारा होता आत्मज्ञान सभी मंगलों में प्रधान मंगल है एवं नित्य वर्द्धमान मंगल है।

नम्रता एवं बहुमान

जीव कर्म से बंधा हुआ है यह विचार जिस प्रकार नम्रता को लाता है वैसे ही कर्म से मुक्त हुए पुरुषों के प्रति आन्तरिक बहुमान भी नम्रता को लाता है।

कर्म का विचार पाप का प्रायश्चित करवाता है एवं धर्म का विचार पुण्य का बीज बनता है।

'नमो' मन्त्र में कर्म का अनादर है एवं धर्म का आदर है, दूसरों का अपकार करने से जो कर्म का बंध हुआ है उसका स्वीकरण है एवं परोपकार से जो धर्म की प्राप्ति होती है उसका भी श्रद्धापूर्वक स्वीकरण है।

अपने को धर्म प्रदान करने वाले दूसरे हैं। अतः उन उपकारियों के लिए नमस्कार जिस प्रकार धर्मवृद्धि का कारण है वैसे ही दूसरों के प्रति किया जाने वाला उपकार भी धर्म की वृद्धि करता है। धर्म को प्राप्त करने एवं उसके सम्पादन के लिए भी परोपकार आवश्यक है।

नमस्कार एक ओर तो अपराध को क्षमा करवाने के लिए आवश्यक है तो दूसरी ओर उपकार को स्वीकार करवाने के लिए भी आवश्यक है। नमस्कार द्वारा उपकार का स्वीकरण एवं अपराध की क्षमापना दोनों एक ही साथ सम्भव होती हैं।

अधर्म से छूटने के लिए एवं पुनः अधर्माचरण नहीं करने हेतु नमस्कार आवश्यक है। श्री नमस्कार मंत्र सभी पापों का प्रणाशक एवं सर्व मंगलों का मूल कहा जाता है। उसका कारण है वह पाप के प्रायश्चित्त की बुद्धि से निष्पाप पुरुषों के लिए नमन क्रिया रूप है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परापकाररहित एवं परोपकारसहित होने की बुद्धि से जो नमस्कार किया जाता है वह भावनमस्कार है। वह भाव-नमस्कार पाप का प्रणाशक एवं मंगलवर्द्धक बनता है। भाव-नमस्कार में दुष्कृत-गर्हा एवं सुकृतानुमोदना निहित है एवं इन दोनों से युक्त होकर आत्मज्ञानी पुरुषों की शरणागति भी निहित है। आत्मज्ञानी पुरुषों की शरणागति आत्मज्ञान को सुलभ बनाती है। श्री नमस्कार मंत्र में आत्मज्ञान एवं कर्म विज्ञान दोनों एक ही साथ निहित होने से उसमें सर्वमंत्र-शिरोमणिता निहित है।

श्री नवकार मंत्र से पाप का प्रायश्चित होता है एवं आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है। इससे उस एक ही मंत्र में आत्म-कल्याण की सिद्धि करवाने वाले सभी अनुष्ठानों का सार आ जाता है।

आधिकारिकता एवं योग्यता

श्री नमस्कार मंत्र का जाप एवं उसकी अर्थभावना सभी अन्तरायों का निवारण करने वाली होती है एवं आत्मज्ञान का कारण बनती है। अतः पापभीरु एवं आत्मार्थी सभी भव्य आत्माओं को उसका निरन्तर स्मरण आनन्दप्रदायक होता है तथा उसके जाप करने वाले एवं अर्थभावना करने वाले को सदैव के लिए निर्भय एवं निश्चित बनाता है।

श्री नमस्कार मंत्र के जाप के लिए तथा उसकी अर्थ-भावना के लिए जो योग्यता चाहिए वह निम्न गुणों के अभ्यास से आती है।

१. भद्रिक परिणति

२. विशेष निपुणमति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. न्याय मार्गरति

४. दृढ़ निज-वचन-स्थिति

मनुष्य मात्र में ये चारों गुण आंशिक रूप में होते ही हैं। उन्हें अधिक से अधिक विकसाते रहने से महामंत्र की आधिकारिकता प्राप्त होती है।

भद्रिकपरिणति मे अक्षुद्रता, मध्यस्थता, अक्रूरता, सौम्यता, दयालुता, दाक्षिण्यता, वृद्धानुसारिता एवं विनीतता मुख्य हैं।

निपुणमतिता में दीर्घदर्शिता, विशेषज्ञता, कृतज्ञता, परार्थता, लब्ध–लक्ष्यता आदि मुख्य हैं।

न्यायमार्गरति में निर्दम्भता, लज्जालुता, पापभीरूता, गुणरागिता आदि मुख्य हैं।

वैसे ही दृढ़-निज-वचन-स्थिति में लोकप्रियता, सुपक्षयुक्तता आदि गुण मुख्य हैं।

चौदहपूर्व का सार अभेद नमस्कार

चौदहपूर्वी भी अन्तिम समय में श्री नवकार का स्मरण करते हैं। इसीलिए नवकार को चौदह पूर्व का सार कहा गया है।

नमस्कार द्रव्य-भाव-संकोच रूप है। द्रव्यसंकोच काया एवं वचन का है। भावसंकोच मन का है। द्रव्यसंकोच द्रव्य-नमस्कार रूप है। भावसंकोच भावनमस्कार रूप है। भाव-नमस्कार, परमार्थ नमस्कार एवं तात्त्विकनमस्कार एक हीअर्थ को कहते हैं। तात्त्विक नमस्कार अभेद-प्रणिधान रूप है इसी-लिए अभेद प्रणिधान ही चौदह पूर्व का सार है—यह सिद्ध होता है। नमस्कार्य के साथ नमस्कारकर्ता का जो अभेद–एकत्व है, उसका जो प्रणिधान है, वही तात्त्विक नमस्कार है।

परमात्मा को उद्दिष्ट कर स्वयं की आत्मा का तात्त्विक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूप जिसमें प्रणिधान का विषय बनता है वही अभेद नमस्कार है। उसमें ध्याता एवं ध्येय वे हैं जो ध्यान के साथ एकत्व साधते हैं एवं तत्र वह आत्मा स्वयं ही परमात्म-स्वरूप बन जाती है।

सब कुछ पढ़ने के बाद भी अन्त में परमात्मपद प्राप्तव्य है, यही सभी प्रयोजनों का मौलिभूत प्रयोजन है एवं सभी क्रियाओं की सफलता भी इसी में है।

जिसमें आत्मा लीन होती है उसमें आत्मा तद्रूप बन जाती है। परमात्मपद में लयभाव की वृद्धि होने से आत्मा परमात्मस्वरूप बन जाती है। इसलिए परमात्म-स्मरण सकल शास्त्रों का सारभूत गिना जाता है।

श्री नवकार मंत्र का जो विशेष महत्त्व है उसका एक कारण यह भी है कि इसकी शब्दरचना विशिष्ट है।

उपनिषदों में 'ब्रह्म' को ही 'नमः' रूप मानकर उपासना कही गई है। श्री अरिहंतादि पांचों को भी 'नमः' अथवा 'ब्रह्म' रूप मानकर जब उपासना की जाती है तब उपासक तद्रूप बन जाता है। उसे ही सच्ची अर्थभावना कहा गया है। उसी से उपासक की सभी कामनाएं विलीन हो जाती हैं अर्थात् पूर्ण हो जाती हैं। कहते हैं कि—

'तन्नम इत्युपासीत, नम्यन्तेऽस्मै कामाः'

उपनिषद्

अर्थात्—'नमः' परमात्मा का साक्षात् अक्षरात्मक नाम है। अन्तरंग शत्रुओं को नमाने वाला होने से परमात्मा 'नमो' स्वरूप है। अन्तरंग शत्रुओं को नमाने वाले परमात्मा का ध्यान जो कोई करता है उसके काम अर्थात् कामनाओं एवं काम विकारों का शमित होना स्वाभाविक है। पुनः गुण की पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए तभी गिने जाते हैं कि जब उनके ध्यानादि से दूसरों में ये गुण प्रकट होते हैं एवं विरोधी दोष शमित हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाते हैं। इस दृष्टि से "नम्यन्तेऽस्मै कामाः" वाला उपनिषद् वाक्य भी संगत होता है। 'नमो' पद द्वारा परमात्मा की उपासना होती है। यह बात दूसरी भी अनेक रीतियों से संगत होती है।

नमो अरिहताणं पद में नमस्कार का स्वामी निश्चयदृष्टि से जैसे नमस्कार करने वाला बनता है वैसे ही व्यवहारनय से नमस्कार का स्वामित्व नमस्कार्य श्री अरिहंत परमात्मा का है। इसीलिए नमस्कार से अभिन्न परमात्मा ही 'नमो' पद से उपास्य बनते हैं। इस प्रकार पांचों परमेष्ठि 'नमो' पद से उपास्य बनते हैं।

द्रव्यगुणपर्याय से नमस्कार

नमस्कार आत्मगुण है एवं "गुण और गुणी में अभेद है" इस न्याय से नमस्कार आत्मद्रव्य भी है। द्रव्य पर्याय का आधार है। इस दृष्टि से नमस्कार आत्मद्रव्य का शुभपर्याय है। इस प्रकार नमस्कार रूपी आत्मद्रव्य, नमस्कार रूपी आत्मगुण एवं नमस्कार रूपी आत्मपर्याय द्वीप, त्राण, शरण, गति एवं आधार हैं। अर्थात् नमस्कार संसार समुद्र में द्वीप है, अनर्थमात्र का घातक है, भवभय का त्राता है, चारों गति के जीवों का आश्रय स्थान एवं भव रूपी कूप में पड़ते हुए जीवों का आलम्बन भूत बनता है। आत्मद्रव्य द्वीप है, आत्मगुण, त्राण, शरण एवं गति है तथा आत्मपर्याय भवकूप में डूबते जीवों के लिए आधार है। अथवा द्रव्य, गुण एवं पर्याय से आत्मा ही नमस्कार रूप है। इसीलिए अन्ततः गुणपर्याय के आधार-भूत आत्मद्रव्य ही द्वीप, त्राण, शरण, गति एवं आधार हैं।

सहभावी पर्याय को गुण कहते हैं, क्रमभावी अवस्था को पर्याय कहते हैं। नमस्कार आत्म-गुण भी है एवं आत्म-पर्याय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी है। गुणपर्याय का आधार द्रव्य है अतः आत्मद्रव्य रूप नमस्कार ही संसारसागर में द्वीप, संसार अटवी में त्राण, संसार कारागार में शरण, संसार अरण्य में गति, संसार कूप में आधार, अवलम्बन एवं प्रतिष्ठा है।

सम्यग्दृष्टि जीवों का त्राण

धर्म के दो प्रकार हैं—एक श्रुतधर्म तथा दूसरा चारित्र-धर्म। श्रुतधर्म का प्रतीक नवकार है। चारित्रधर्म का प्रतीक श्री सामायिकसूत्र है। एक के ६८ अक्षर हैं, दूसरे के ८६ अक्षर हैं। देशविरति सामायिक सूत्र के ७६ अक्षर हैं।

नवकार देवतत्त्व, गुरुतत्त्व तथा धर्मतत्त्व रूप तत्त्व-त्रयी को बताने वाला है इसीलिए नवकार में नवतत्त्व का ज्ञान है। देवतत्त्व मोक्षस्वरूप है, गुरुतत्त्व मोक्षमार्ग रूप है तथा धर्मतत्त्व मोक्ष को प्राप्त तथा मोक्षमार्ग पर स्थित पुरुषों का बहुमानस्वरूप होने से धर्मतत्त्व रूप है। देवतत्त्व के बहुमान से संसार को हेयता एवं मोक्ष की उपादेयता का ज्ञान होता है, गुरुतत्त्व के बहुमान से संवर-निर्जरारूप तत्त्व की उपादेयता तथा आस्रव-बन्ध तत्त्व को हेयता का ज्ञान होता है। धर्मतत्त्व के बहुमान से पुण्यतत्त्व की उपादेयता तथा पापतत्त्व की हेयता का ज्ञान होता है। समग्र नवकार जीवतत्त्व की उपादेयता का तथा अजीवतत्त्व की हेयता का बोध कराता है। इस प्रकार नवकार में नवों तत्त्वों का हेयोपादेयता सहित बोध होता है।

नवकार में हेय तत्त्वों की हेयता का ज्ञान तथा उपादेय तत्त्वों की उपादेयता का ज्ञान इसी प्रकार होता है। पाप, आस्रव तथा बन्ध हेय हैं, पुण्यानुबंधीपुण्य, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष उपादेय हैं; ऐसा सम्यक् बोध नवकार के ज्ञान से होने से सम्यग् दृष्टि जीवों के लिए वह प्राणरूप है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकज्ञान एवं स्थैर्योत्पादकक्रिया

धर्म मंगल है जो दो प्रकार का है एक क्रियारूप तथा दूसरा ज्ञानरूप। ज्ञानरूपमंगल के बिना अकेला क्रियारूप मंगल अथवा क्रियारूपमंगल के बिना अकेला ज्ञानरूपमंगल मोक्षमार्ग नहीं बन सकता है।

देव, गुरु एवं धर्म रूपी तत्त्वत्रयी उपास्य है। ज्ञान, दर्शन एवं चरित्र रूपी तत्त्व-त्रयी सेव्य है। उपास्य तत्त्व की उपासना नवकार रूपी श्रुतमंगल से होती है इसलिए वह ज्ञान स्वरूप है। सेव्य तत्त्व की आराधना श्री सामायिकसूत्र की प्रतिज्ञा से होती है इसलिए वह क्रिया स्वरूप है। एक का मंगलपाठ होता है दूसरे की मंगलप्रतिज्ञा होती है। मंगल पाठ में ज्ञान मुख्य है एवं क्रिया गौण है। मंगलप्रतिज्ञा में क्रिया मुख्य है एवं ज्ञान गौण है। जहाँ ज्ञान रहता है वहाँ गौण रूप से क्रिया भी निहित है। जहाँ क्रिया मुख्य है, वहाँ गौण रूप से ज्ञान भी निहित है।

नवकार द्वारा पाप नहीं करने की प्रतिज्ञा का बहुमान होता है। सामायिक द्वारा बहुमान पूर्वक पाप नहीं करने की प्रतिज्ञा का स्वीकार होता है। ज्ञानमात्र का मूलस्रोत नवकार है। क्रियामात्र का मूलस्रोत 'करेमिभंते' है।

क्रिया के कारण तीन योग एवं तीन करण हैं। उसका नियमन "करेमिभंते" की प्रतिज्ञा से होता है। सामायिक में सावद्यत्याग एवं निरवद्यसेवन की प्रतिज्ञाएं तीन करण से एवं तीन योग से व्याप्त हैं। सावद्यक्रिया अस्थैर्यनिष्पादक है। उसके त्याग की क्रिया आत्मा में स्थैर्य उत्पन्न करती है।

ज्ञान प्रकाशक है। क्रिया स्थैर्यजनक है। दोनों मिलकर आत्मसुख के कारण बनते हैं। नवकार द्वारा नवतत्त्व,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षड्द्रव्य तथा आत्म-अनात्म तत्त्व का ज्ञान दृढ़ कर सामायिक की क्रिया द्वारा उस ज्ञान का सम्यक् आचरण किया जा सकता है।

नम्रता एवं सौम्यभाव

नम्र जीव ही सुरक्षापूर्वक उन्नति के शिखर पर चढ़ सकते हैं।

नम्रता एवं सौम्यभाव रूपी दो अश्वों को नमस्कारभाव रूपी रथ में संयुक्त कर मोक्षमार्ग के प्रवास की शुरुआत हो सकती है। जहाँ नमस्कारभाव नहीं वहाँ नम्रता नहीं एवं जहाँ नम्रता नहीं वहाँ सौम्यभाव नहीं। सौम्यभाव का अर्थ है समभाव। समभाव के बिना किसी भी सद्गुण का सच्चा वास आत्मा में नही हो सकता। अपनी हीनता एवं कमियों की बेधड़क स्वीकृति के बिना नमस्कारभाव की झांकी भी हो नहीं सकती। नमस्कारभावरहित कोरी नम्रता अहंकारभाव को जन्म देनेवाली है एवं ठगारी होती है।

नमस्कारभाव तीनों जगत के स्वामित्व का बीज है। श्री तीर्थंकर भगवन्त एवं श्री सिद्ध भगवन्तों की समस्त ऋद्धि-सिद्धि एवं आत्मसमृद्धि इस नमस्कारभाव में से ही प्रकट हुई है।

नमस्कार भाव का एक अर्थ क्षमायाचना है। क्षमायाचना से चित्त प्रसन्न होता है। अर्थात् चित्त में से खेद, उद्वेग, विषादादि दोष चले जाते हैं।

नमस्कारभाव का दूसरा अर्थ कृतज्ञता एवं उदारता है। नमस्कारभाव द्वारा पर के उपकार का स्वीकरण होता है एवं दूसरों पर उपकार करने की प्रवृत्ति पैदा होती है। इसमें एक का नाम कृतज्ञता है एवं दूसरी का नाम उदारता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृतज्ञता गुण द्वारा पात्रता विकसित होती है। जीव की अनादि-काल की अयोग्यता को अर्थात् अपात्रता को शास्त्रकार सहजमल के शब्द से सम्बोधित करते हैं। सहजमल का कारण जीव का कर्म से सम्बन्धित होना है एवं कर्म का सम्बन्ध जीव को विषयाभिमुख बनाता है। विषयाभिमुखता स्वार्थ-वृत्ति का ही दूसरा नाम है। नमस्कार भाव स्वार्थवृत्ति का उन्मूलन करता है।

जीव की गुप्त योग्यता को शास्त्रकार 'तथाभव्यत्व' शब्द से सम्बोधित करते हैं। इसका परिपाक जीव को धर्म के साथ सम्बन्धित करता है। नमस्कार भाव द्वारा वह योग्यता विकसित होती है तथा वह धर्म तथा धर्मात्माओं के साथ सम्बन्धित करवाता है। धर्म तथा धर्मी आत्माओं का सम्बन्ध समत्वभाव (सौम्य गुण) को विकसित करता है। समत्व भाव की वृद्धि परोपकारभाव को उत्तेजित करती है। परस्पर सहाय तथा शुभेच्छा के बिना किसी भी जीव की प्रगति नहीं हो सकती। यह कार्य शत्रुता से नहीं वरन् मित्रता से ही हो सकता है।

नमस्कारभाव मित्रता के अभ्यास का अमोघ साधन है। नमन शुरू किया नहीं कि मित्र मिलने लगते हैं—यह सनातन नियम है। मित्र शुभेच्छा लेकर ही आते हैं। इस प्रकार परस्पर शुभेच्छा की वृद्धि होने से औदार्यभाव विकसित होता है। इन सबका मूल नमस्कारभाव है। नमस्कारभाव से अभ्यस्त होने का बड़ा मंत्र "नमो अरिहंताणं" है जो भाव से नित्य इस मंत्र का स्मरण करते हैं उनकी अपात्रता नष्ट होती है, पात्रता विकसित होती है, कर्म का सम्बन्ध घटता है स्वार्थ-वृत्ति घटती है, परार्थवृत्ति बढ़ती है, चित की संकुचितता नष्ट होती है, एवं विशालता बढ़ती है साथ ही परिणाम स्वरूप कर्मक्षय होता है तथा परम्परा से मोक्ष मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'नमो' पद से शान्ति, तुष्टि एवं पुष्टि

विषयों के राग से होती अशान्ति 'नमो' पद के जाप से टलती है। 'नमो' पद के जाप द्वारा क्षुद्र विषयों के राग के स्थान पर परम परमेष्ठियों के प्रति रागभाव जागृत होता है। परमेष्ठियों के प्रति भक्तिराग विषयों के राग से उत्पन्न होती अशान्ति को टालता है तथा शान्ति को प्रदान करता है।

भोजन द्वारा क्षुधा शान्त होने के साथ ही जैसे शरीर में आरोग्य तथा बल का अनुभव होता है वैसे ही 'नमो' पद के रटण से विषयाभिलाषा टलने के साथ ही आत्मा को तुष्टि तथा पुष्टि मिलती है।

'नमो' पद में भक्ति, वैराग्य तथा ज्ञान तीनों एक साथ स्थित हैं। भक्ति अर्थात् प्रेम, वैराग्य अर्थात् विषयों से विमुखता तथा ज्ञान अर्थात् स्वरूप का बोध। स्वरूप के बोध से बल मिलता है जो पुष्टि के स्थान पर है। भक्ति से प्रेम जागृत होता है जो तुष्टि के स्थान पर है तथा वैराग्य से विषय-विमुखता होती है जो शान्ति स्वरूप है। इस प्रकार 'नमो' पद का जाप आध्यात्मिक 'शान्ति' आध्यात्मिक 'तुष्टि' तथा आध्यात्मिक 'पुष्टि' का कारण बनता है। 'नमो' पद का जाप चन्दन की भांति 'शीतलता' शक्कर की भांति 'मधुरता' तथा कंचन की भांति 'शुद्धता' समर्पित करता है। शीतलता शान्तिकर है, मधुरता तुष्टिकर है तथा शुद्धता पुष्टिकर है।

'नमो' पद द्वारा विषयों से विरसता तथा परमेष्ठियों में सरसता का भाव अभ्यस्त होता है।

पांच विषय ही संसार है तथा पंचपरमेष्ठि ही मोक्ष हैं। 'नमो' पद विषयों का विस्मरण करवाता है तथा निर्विषयी-निर्विकारी आत्मा का स्मरण करवाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'नमो' यह समझाता है कि अनात्मा से आत्मा का मूल्य अधिक है। 'नमो' पद द्वारा अनात्मभाव की विस्मृति तथा आत्मभाव की स्मृति जागृत होती है।

मोक्षमार्ग में भावना तथा ध्यान को रागादि दोषों के क्षय हेतु अति उपयोगी माना गया है। 'नमो अरिहंताणं' मंत्र में 'नमो' पद भावना का उत्पादक है तथा 'अरिहंताण' पद ध्यान का साधन है।

विषयों का रस घटाने का कार्य 'नमो' पद की भावना से होता है तथा आत्मरस जगाने का काम श्री अरिहंतपद के ध्यान से होता है। विषयों का स्मरण अनादि अभ्यास के कारण अपने आप होता है। देव गुरु का स्मरण अभ्यास के बल से साध्य है। देव-गुरु के स्मरण का अभ्यास दृढ़ होने के पश्चात् विषयों का स्मरण अपने आप टल जाता है।

बहिरात्मभाव में आत्मा का चला जाना एक प्रकार का आध्यात्मिक आत्मघात है। उससे जीवन को बचाने वाला श्री नमस्कार मंत्र का जाप है।

भाव नमस्कार

'नमो अरिहंताणं' अर्थात् 'अरिहंतों को नमस्कार' इस पद का तात्पर्यार्थ यह है कि मैं अरिहंतों का दास हूँ, प्रेष्य हूँ, किंकर हूँ तथा सेवक हूँ। अरिहंत मेरे स्वामी हैं, नाथ हैं, मालिक हैं तथा सत्ताधीश हैं। अरिहंतों के निर्देश को, अरिहंतों की आज्ञा को, अरिहंतों के कार्य को तथा अरिहंतों की सेवा को मैं स्वीकार करता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि उनकी आज्ञा का पालन ही मेरा परमधर्म है।

नमस्कार्य की आज्ञानुसार जीवन जीना ही नमस्कारकर्त्ता का शुभभाव है। आज्ञापालन को परमकर्त्तव्य समझने वाला ही सच्चा नमस्कार करने वाला गिना जाता है। आज्ञा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से पराङ्मुखवृत्ति वाले का नमस्कार 'नाम निक्षेप' नमस्कार है। आज्ञा में सच्चा बहुमानभाव भावनिक्षेप से सच्चा नमस्कार है भावनमस्कार तथा आज्ञापालन का अध्यवसाय एकार्थक है।

नमन करना, परिणमित होना तथा तदाकार होना नमस्कार का भावार्थ है। श्री अरिहंतों के विषय में एकचित्त होना, उनके विषय में ही मन स्थापित करना, उनका ही ध्यान तथा उनके विषय में ही लेश्या भावनमस्कार है। भाव से नमना अर्थात् तद्रूप होना तथा तद्रूप परिणमित होना अर्थात् त्रिकरणयोग से उनको ही समर्पित होना; तन, मन तथा धन को उनके ही कार्यों में प्रयुक्त करना है। उनके कार्य को करने में तीनों लोकों का हित है। उस कार्य को अपना कार्य मानना साथ ही मन, वचन तथा काया के योग से उसी में प्रयुक्त होना ही भावनमस्कार है।

भावनमस्कार एवं आज्ञायोग

'नमो अरिहंताणं' के जाप से श्री अरिहंतों की आज्ञापालन का अध्यवसाय जागृत होता है। श्री अरिहंतों की आज्ञा अर्थात् षड्जीवनिकाय का हित हो ऐसा जीवन जीना। यही श्री अरिहंतों के नमस्कार का फल है।

आज्ञापालन के अध्यवसाय का अर्थ है समस्त जीवराशि पर स्नेह का परिणाम, समस्त जीवराशि के हित का अध्यवसाय तथा तदनुसारी जीवन।

प्रभु की आज्ञा पर प्रेम उत्पन्न होने का प्रथम कारण आज्ञाभंग की भीति है तथा आज्ञाभंग से उत्पन्न होते दुष्ट विपाकों का चिन्तन है। आज्ञाभंग की भीति द्वारा प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीति के बाद भक्ति जागती है तथा तत्पश्चात् आज्ञापालन की रुचि प्रकट होती है। इस रुचिपूर्वक जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुष्ठान होता है वह वचनानुष्ठान कहा जाता है तथा उसके परिणामस्वरूप असंगानुष्ठान की प्राप्ति होती है ऐसा क्रम है। असंगानुष्ठान निर्विकल्प चिन्मात्र समाधि रूप है। वह ज्ञान क्रिया की अभेद भूमिका रूप है क्योंकि वह शुद्धउपयोग तथा शुद्धवीर्योल्लास के साथ तादात्म्य भाव को धारण करता है।

अत्यन्त प्रीति पूर्वक होने वाला प्रीतिअनुष्ठान, आदर बहुमान पूर्वक होने वाला भक्तिअनुष्ठान, आगमानुसारी सम्पन्न होने वाला वचनानुष्ठान तथा अतिशय अभ्यास से आगम की अपेक्षा बिना सहजभाव से ही सम्पन्न होने वाला असंगानुष्ठान होता है। असंगानुष्ठान में योग तथा उपयोग की शुद्धि उसके प्रकर्ष पर्यन्त पहुँची हुई होती है।

षड्जीवनिकायों के हित की बुद्धि से उत्पन्न हुआ श्री अरिहंत भगवन्तों पर प्रीति का परिणाम शुद्ध तथा स्थिर होता है। षड्जीव निकाय के हित का परिणाम सर्व प्रथम भवभीति से उत्पन्न होता है। उसके पश्चात् वह आत्मौपम्यभाव से उत्पन्न होता है।

श्री अरिहंतों की भक्ति द्रव्य तथा भाव दोनों से होती है। उसमें भावभक्ति आज्ञापालन स्वरूप है अतः भावभक्ति का बीज आज्ञा पालन का अध्यवसाय है। यही अध्यवसाय भाव-नमस्कार की प्राप्ति करवाता है। भाव नमस्कार अन्त में सर्व पाप वृत्तियों का नाशकर परम मंगलपद की प्राप्ति करवाता है।

नमस्कार द्वारा ध्यानसिद्धि

आज्ञा का आराधन मोक्ष के लिए होता है तथा आज्ञा का विराधन संसार के लिए होता है। प्रभु की आज्ञा आस्रवों के त्याग की तथा संवरों के स्वीकार की है। जिन जिन क्रियाओं से आत्मा में कर्म आता है वह आस्रव है तथा आने वाले कर्म जिससे रुकें वह संवर है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भव का अन्त या भवभ्रमण प्रभु के अधीन है अथवा प्रभु की आज्ञा के अधीन है। आज्ञा की आराधना मोक्ष का तथा विराधना ही भव का कारण है। संवरभाव आज्ञा की आराधना है। सामायिक संवर है तथा नमस्कार सामायिक का साधन है अतः नमस्कार भी संवर है सामायिक से अविरति रूपी आस्रव का संवर होता है। नमस्कार से मिथ्यात्व रूपी आस्रव का संवर होता है। नमस्कार में भगवान के स्वरूप का चिन्तन होता है इस निश्चय से निज स्वरूप का ही चिन्तन होता है। श्री जिन की पूजा परमार्थ से निज की ही पूजा है। कहा है कि—

अर्थात्—"जिनवर पूजा रे, ते निज पूजना रे"

भगवत्स्वरूप के आलम्बन से आत्मध्यान सहज बनता है। समस्त द्वादशांगी का सार ध्यानयोग है। ध्यान द्वारा आत्म स्वरूप की स्पर्शना होती है। उसे समापत्ति कहते हैं। श्री नमस्कार मंत्र द्वारा उस ध्यान की सिद्धि होती है। कहा है कि—

"श्री नमस्कारमंत्रेण सकलध्यानसिद्धिः।"

मंत्रसिद्धि के लिए अनिवार्य तत्त्व

पशुत्व दूसरों के भोग पर स्वयं जीने की इच्छा करता है। मनुष्यत्व स्वयं के भोग से दूसरों को जिलाने की इच्छा रखता है अथवा स्वयं जिस प्रकार जीने की इच्छा रखता है वैसे ही सभी जीने की इच्छा रखते हैं–इस प्रकार समझ कर सभी के साथ आत्मतुल्य व्यवहार करता है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान ही तात्विक पशुत्व है। ये ही भावशत्रु हैं। उन भावशत्रुओं का नाश अपनी आत्मा की तथा जगत के जीवों की शान्ति हेतु अनिवार्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'मातृवत् परदारेषु'

—यह भावना काम तथा राग को शमित करती है।

''लोष्टवत्' परद्रव्येषु'

—यह भावना लोभ तथा मोह को वशवर्ती करती है

'आत्मवत् सर्वभूतेषु'

—यह भावना मद, मान, ईर्ष्या असूयादि विकारों को शमित करती है।

शास्त्र कहते हैं कि क्षान्त, दान्त तथा शान्त आत्मा को ही कोई भी प्रार्थना या मंत्र फलप्रद होता है।

अहिंसा के पालन से क्रोध जीता जाता है तथा क्षान्त बना जाता है। संयम के पालन से काम जीता जाता हैं तथा दान्त बना जाता है। तप के सेवन से लोभ जीता जाता है तथा शान्त बना जाता है। काम को जीतने के लिए 'मातृवत् परदारेषु' की भावना कर्त्तव्य हैं। लोभ को जीतने हेतु "लोष्टवत् परद्रव्येषु" की भावना कर्त्तव्य है। क्रोध को जीतने के लिए आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना कर्त्तव्य है। लोभ को जितने वाला शान्त आत्मा ही सच्चा तपस्वी है, काम को जीतने वाला दान्त आत्मा ही सच्चा संयमी है तथा क्रोध को जीतने वाला क्षान्त आत्मा ही सच्चा अहिंसक है। मंत्रसिद्धि की योग्यता प्राप्त करने हेतु ये तीनों गुण प्राप्त करने चाहिए।

आत्मा ही नमस्कार है

मंत्र साधना का महत्त्व अर्थ की दृष्टि से नहीं पर दूसरी दृष्टि से भी है। 'नमो' श्रद्धासूचक है, सर्वज्ञता का बीज होने से 'अरिहं' ज्ञानसूचक है तथा मननक्रिया रूप होने से 'ताणं' चारित्र सूचक है। इस प्रकार नमो अरिहंताणं' मंत्र के तीनों पद रत्नत्रयसूचक हैं। अनुक्रम से तत्त्वरुचि,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्वबोध तथा तत्त्वरमणता रूप अर्थ को बताता है। यह अर्थभेद रत्नत्रयी की दृष्टि से है। अभेद-रत्नत्रयी की दृष्टि से भी उसका अर्थ घटाया जा सकता है। 'अर्हम्' पद की व्याख्या करते हुए श्री सिद्धहेमवृहद्वृत्ति में कहा है कि—

"प्रणिधानं चाऽनेन सह आत्मनः सर्वतः संभेदः तदभिधेयेन चाऽभेदः। अयमेव हि तात्त्विको नमस्कार इति"।

अर्थात्—'अर्हं' पद का प्रणिधान संभेदप्रणिधान है एवं अर्हंपदवाच्य परमात्मस्वरूप की एकता का प्रणिधान अभेद-प्रणिधान है। यह अभेदप्रणिधान ही तात्त्विक नमस्कार है। यहाँ 'एव' द्वारा नमस्कार एवं अरिहंत का अभेद सूचित किया गया है। जिस प्रकार 'अर्हम्' का अभेदप्रणिधान तात्त्विक नमस्कार है वैसे ही 'त्राण' भी 'अरिहंत' परमात्मा ही है। इस प्रकार 'नमो' 'अरिहं' एवं 'ताणं' ये तीनों एक ही अर्थ को सूचित करने वाले बन जाते हैं।

'अर्हं' वाच्य श्री अरिहंत परमात्मा का नमस्कार तथा उससे फलित होता त्राण-रक्षण एक ही आत्मा में स्थित है। आत्मा ही 'अर्हं' आत्मा ही 'त्राण' तथा आत्मा ही 'नमो' नमस्कार रूप है। दूसरे शब्दों में आत्मा ही ज्ञान, आत्मा ही दर्शन तथा आत्मा ही चारित्र है। यह अभेद रत्नत्रयी भी नमस्कार के प्रथम पद में निहित है।

नमस्कार द्वारा विश्व का प्रभुत्व

पांच समवायों का विश्व पर प्रभुत्व है। पांच समवाय अर्थात् पांच कारणों का समुदाय। पांचों कारणों के नाम अनुक्रम से काल, स्वभाव, नियति, कर्म तथा पुरस्कार हैं। चित्त को समत्व भाव की शिक्षा पांच कारणवाद के तत्त्वज्ञान से मिलती है। पांच कारणों का समवाय मानने से दीनता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहंकारादि, दोषों का विलोप हो जाता है। अकेला देववाद मानने से दैन्य आता है। अकेला पुरस्कारवाद मानने से अहंकार उत्पन्न होता है। अकेला नियति, अकेला काल अथवा अकेला स्वभाववाद मानने से स्वच्छन्दवृत्ति का पोषण होता है। पांचों कारण मिल कर कार्य बनता है ऐसा मानने से एकैकवाद से पुष्ट होते हुए स्वच्छन्दादि दोषों का निग्रह होता है तथा अच्छे बुरे प्रसंगों के समय चित्त का समत्व टिका रहता है। ज्यों-ज्यों समत्व भाव विकसित होता है त्यों त्यों कर्मक्षय बढ़ता जाता है। सम्यक्त्व समत्वभाव रूप है अतः उसे समकित-सामायिक कहा जाता है। विरति अधिक समत्व सूचक है अतः उसे देशविरति तथा सर्वविरतिसामायिक कहते हैं। अप्रमाद इससे भी अधिक समत्व सूचक है। इससे भी आगे अकषायता अयोगतादि उत्तरोत्तर अधिक समत्व रूप होने से अधिकाधिक निर्जरा के कारण हैं।

विश्व पर पांच समवायों का प्रभुत्व है। अर्थात् समत्व भाव का प्रभुत्व है तथा समत्व भाव पर श्री अरिहंतादि चार का प्रभुत्व है। कहा है कि--

काल स्वभाव भवितव्यता,
अे सगलां तारा दासो रे।
मुख्य हेतु तू मोक्ष नो,
अे मुज सबल विश्वासो रे।
—पू. उपा. श्री यशोविजयजी महाराज

श्री अरिहंत, सिद्ध, साधु तथा केवलिप्रज्ञप्तधर्म-इन चारों के आलम्बन से शुभभाव प्रकट होते हैं। ये शुभभाव पांच समवायों पर प्रभुत्व रखते हैं। अतः विश्व के सच्चे स्वामी श्री अरिहंतादि चार हैं। उनका नमस्कार, नमस्कार करने वाले को समग्र विश्व पर प्रभुत्व प्रदान करवाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पांचों कारणों पर शुभभाव का प्रभुत्व

दुष्कृतगर्हा द्वारा सहजमल का ह्रास होता है। सुकृतानुमोदना के द्वारा तथाभव्यत्वभाव का विकास होता है। शरण गमन द्वारा दोनों ही साधे जा सकते हैं क्योंकि जिनकी शरणग्रहण की जाती है उनका सहजमल सर्वथा विनष्ट हुआ होता है एवं उनका तथाभव्यत्व पूर्ण रूप से विकसित हुआ होता है। परपुद्गल से सम्बन्धित होने की शक्ति को सहजमल कहते हैं। सभी दुष्कृत इसी शक्ति के परिणाम हैं। जब उस शक्ति का बीज जल जाता है तब परपुद्गल के सम्पर्क में आने की इच्छा मात्र का विलय हो जाता है। पराधीन सुख को प्राप्त करने की इच्छा नष्ट होने से स्वाधीन सुख को प्राप्त करने की इच्छा विकसित होती है--यही तथाभव्यत्व का विकास है।

स्वाधीन सुख प्राप्त हुओं की शरण अचिन्त्य शक्तिशाली है। वह पराधीन सुख की इच्छा का नाश करवा कर एवं स्वाधीन सुख की इच्छा का विकास करवा कर अन्त में स्वाधीन सुख को सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करवाकर ही शान्त होती है।

अनादि निगोद में से जीव को बाहर निकालने वाले श्री सिद्ध भगवन्त हैं। उनका ऋण स्वीकार करने वाला उनके सुकृत का निरन्तर अनुमोदन करता है। वे ऋण वह जब तक चुका नहीं देता तब तक वह अपने उस दुष्कृत की गर्हा करता है।

श्री सिद्ध भगवन्त के उपकार रूपी सुकृत को एवं संसार में अपने द्वारा दूसरों पर किए जाने वाले अपकार रूप दुष्कृत को जो निरन्तर याद करता है उसे सच्चा दुष्कृतगर्हण होता है। गर्हण सहजमल का नाश करता है एवं अनुमोदन भव्यत्वभाव का विकास करता है। उसके प्रभाव से मुक्ति के पांचों कारण आ मिलते हैं। अतः पांचों कारणों पर शुभ भाव का प्रभुत्व है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वैत एवं अद्वैत नमस्कार

परमेष्ठि का अर्थ है परम उत्कृष्ट स्वरूप में अवस्थित भगवन्त। आत्मा का उत्कृष्ट स्वरूप समभाव में है। उसमे जो स्थित हैं, अवस्थित हैं वे परमेष्ठि कहे जाते हैं।

श्री अरिहंत एवं सिद्ध केवल पूज्य हैं, अतःदेवतत्त्व हैं। आचार्य, उपाध्याय एवं साधु पूज्य भी हैं एवं पूजक भी अतः गुरुतत्त्व हैं। धर्म की आत्मा देव एवं गुरुतत्त्व हैं। इन दोनों तत्त्वों की भक्ति धर्म का प्राण है। इस प्राण की रक्षा करने वाले मंदिर, मूर्ति एवं पूजा आदि धर्म के देह एवं वस्त्रालंकार हैं।

बड़ों के सामने अपनी लघुता एवं उनकी गुरुता प्रकट हो वैसा वर्तन करना चाहिए। उसी का नाम नमस्कार है। उसके दो भेद हैं एक द्वैत एवं दूसरा अद्वैत। जब तक विशेष प्रकार की स्थिरता प्राप्त नहीं हुई हो तब तक उपास्य एवं उपासक रूप का द्वैत भाव होता है। यही द्वैत नमस्कार है।

राग द्वेष के विकल्पों का नाश हो जाने से चित्त की इतनी अधिक स्थिरता हो जाती है कि उसमें से द्वैत भाव ही चला जाता है। यह अद्वैत नमस्कार है। उस स्थिति में स्वयं की आत्मा ही उपास्य बनती है एवं अपने शुद्धस्वरूप का ही ध्यान हुआ करता है। द्वैतनमस्कार अद्वैतनमस्कार का साधन मात्र है।

सिद्धों के परोक्षस्वरूप को बताने वाले श्री अरिहंत हैं। अतः व्यवहारदृष्टि से वे प्रथम हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि पंचपरमेष्ठिओं का क्रम पूर्वानुपूर्वी है।

जपक्रिया दृष्टफला है

जाप की क्रिया दृष्टफला—प्रत्यक्ष फल प्रदान करने वाली है। मंत्रशक्ति कभी भी गलत साबित नहीं होती। जिस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिजली के प्रवाह में बिजली का सामर्थ्य गुप्तरीति से निहित है वैसे ही मंत्र में उसके देवता का दिव्यसामर्थ्य दिव्यतेज गुप्त रीति से निहित होता है। अनुकूल द्योतन द्वारा उसे प्रकट क्रिया जा सकता है। जो साधक की आत्मा को दिव्यता प्रदान करे उसे देव कहते हैं। देवता, ऋषि, छन्द तथा विनियोग, ये चार वस्तुएं मंत्र में महत्त्व की हैं।

जप को यज्ञ भी कहते हैं। जपयज्ञ में होम करने का पदार्थ अहंकारभाव है। अहंकारभाव के कारण ही जीव का शिवस्वरूप विस्मृत हो गया है। आत्मारूपी देव के समक्ष जीव का अहंकारभाव समर्पित करना है। यह क्रिया ही चित्त-प्रसाद को प्रकट करती है।

मन्त्रजाप के साथ मन्त्रदेवता का एवं मन्त्रप्रदाता सद्‌गुरु का ध्यान भी चित्त में रहना चाहिए। 'नमः' शब्द के उच्चारण होने के साथ ही भाव, वाणी तथा शरीर इष्ट को समर्पित हो जाने चाहिए। उन तीनों पर ममत्व का अभिमान छूट जाना चाहिए। यह अभिमान ज्यों ज्यों छूट जाता है वैसे-वैसे मंत्रदेवता के साथ एकता साधित होती है।

जितने अक्षर का मंत्र हो उतने लक्ष जाप करने से एक पुरश्चरण होता है। उपास्य देवता के साक्षात्कार के लिए ऐसे पुरश्चरणों की खास आवश्यकता होती है। पुरश्चरण के समय उपासक की अनेक प्रकार की कसौटी होती है। उस समय क्षोभरहित धैर्य धारण करने वाले को मंत्रसाक्षात्कार होता है।

स्व पर नियंत्रण प्राप्त करने का महामंत्र

विश्व पर नियंत्रण प्राप्त करने हेतु स्व पर नियंत्रण प्राप्त करना चाहिए। स्वयं की प्रकृति पर नियंत्रण प्राप्त करने हेतु अपनी पांचों इन्द्रियों एवं छठे मन पर नियन्त्रण करना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रियों तथा मन पर काबू जब ही हो सकता है कि जब यह स्पष्ट बोध हो जाय कि उनमें विलसित चैतन्य इन इन्द्रियों तथा मन से पृथक है एवं अपनी शक्ति द्वारा सभी का संचालन कर रहा है। जो खाता नहीं पर खिलाता है, जो पीता नहीं पर पिलाता है, जो सोता नहीं पर सुलाता है, जो पहनता नहीं पर पहनाता है, जो ओढ़ता नहीं पर उढ़ाता है, जो बैठता नहीं पर बिठाता है, जो उठता नहीं पर उठाता है, जो चलता नहीं पर चलाता है, जो देखता नहीं पर दिखाता है, जो सुनता नहीं पर सुनाता है जिसे अपन भूल सकते हैं पर जो अपने को कभी भूलता नहीं, जो सभी इन्द्रियों एवं मन को चैतन्यपूर्ण करता है एवं फिर भी वह सभी से परे है, वही ध्येय है, वही उपास्य है, वही आराध्य है, वही लोक में मंगल, उत्तम एवं शरण्य है। वही स्मरण करने योग्य, स्तुति करने योग्य एवं ध्यान करने योग्य है। यह निश्चय जब दृढ़ होता है तब पांचों इन्द्रियों एवं मन पर तथा अपनी समग्र स्वप्रकृति पर जीव काबू प्राप्त कर सकता है।

महामन्त्र की उपासना में परमध्येय रूप में उसी परम-तत्त्व की ही एक उपासना विविध प्रकार से होती है। अतः उसका जाप तथा स्मरण सतत करने योग्य है।

'नमो' पद द्वारा परमात्मा के समीप जाया जाता है। 'अरिहं' पद द्वारा परमात्मा पकड़ में आते हैं। 'ताणं' पद द्वारा परमात्मा में एकाग्रता की बुद्धि होती है।

समग्र तीनों पदों द्वारा तथा उनकी अर्थभावना द्वारा परमात्मा के साथ एकत्व-अभेद का अनुभव होता है। अतः 'नमो अरिहंताणं' महामंत्र है।

मंत्र का जाप स्थिरचित्त से, स्वस्थगति से तथा मंत्रार्थ चिन्तनपूर्वक होना चाहिए। मंत्र: मंत्रदेवता तथा मंत्रदाता गुरु में दृढ़श्रद्धा, ये साधना के तीन चरण हैं। यदि एक भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरण का भंग हो जाए तो साधना पंगु हो असफल हो जाती है।

'नमो' पद द्वारा औदयिकभाव का निषेध तब तक करना चाहिए जब तक कि एक भी निषेध योग्य परभाव शेष हो। फिर जो अवशिष्ट रहे वही आत्मा है, अरिहंत है एवं शुद्ध स्वरूपी परमात्मा है।

समता सामयिक की सिद्धि

सम्यक् दृष्टि जीवों को विश्व की विविधता एवं विचित्रता, संवेग एवं वैराग्य की वृद्धि हेतु होती है तथा अहिंसा, संयम एवं तपस्वरूप धर्म के पालन में उपकारक होती है।

जीवों की कर्मकृत विचित्रताओं को मैत्र्यादिभाव द्वारा सहना ही अहिंसा का बीज है एवं अपने को प्राप्त होती सुख-दुःख आदि विविध अवस्थाओं को समभाव से सहना ही क्रमशः संयम एवं तप का बीज है।

तपोधर्म को विकसित करने हेतु दुःख की भी उपयोगिता है संयम धर्म को विकसित करने हेतु सुख की भी उपयोगिता है। अहिंसा के आराधन हेतु जीवों की विविधता भी उपयोगी है।

जीवों को सहना ही अहिंसा है, सुखों को सहना ही संयम है एवं दुःखों को सहना ही तप है। जीवों को सहन करने का अर्थ है कि शत्रु, मित्र अथवा उदासीन के प्रति तुल्यभावाभ्यास करना। सुख को सहन करना अर्थात् सुख के समय विरक्त रहना एवं दुःखों को सहन करने का अर्थ है दुःख के समय दैन्यभाव रहित होना।

जीवों की विविधता में एकता का भाव अहिंसा को विकसित करता है सुखों में दुःख-बीजता का ज्ञान संयम को विकसित करता है एवं दुःखों में सुख-बीजता का ज्ञान तपोगुण को विकसित करता है।

यदि दुःख मात्र को समझपूर्वक भोगा जाय तो वह सुख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का बीज है। सुख मात्र यदि बिना समझ के भोगा जाय तो दुःख का बीज है।

जीव मात्र सत्ता से शिव है एवं चैतन्य सामान्य से जीवों में एकता का ज्ञान समत्व विकसित करता है। द्रव्य सामान्य से सुख-दुःख में अभिन्न एक आत्मा का ज्ञान समता-भाव का कारण बनता है। समान भाव को पुरस्सर करने से समता सामयिक की सिद्धि होती है।

धर्म चित्त की समान वृत्ति में है। अहिंसा, संयम, तप आदि क्रिया चित्तवृत्ति को एक ही आलम्बन में टिका कर रखने का साधन है। मंत्रजाप की क्रिया भी मनोगुप्ति अर्थात् मन की रक्षा का साधन है। मनोगुप्ति मोक्ष का साधन है। मंत्र से प्रतिबद्ध मन मनोगुप्ति का साधन बन कर मोक्ष का साधन बनता है।

सर्वश्रेष्ठ जपयज्ञ

जप द्वारा भगवान का प्रणिधान होता है। भगवान के नाम का जप करने से वाह्य व्यापारों का निरोध होता है। शब्दादि बाह्यव्यापार रुक जाने से आन्तरज्योति प्रकट होती है। उसे प्रत्यक्चैतन्य कहते हैं। उससे ज्ञानादि गुणों की विशुद्धि होती है अतः भक्ति एवं श्रद्धा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

शास्त्र कहते हैं कि विशिष्ट गुणवान् पुरुषों के प्रणिधान से महाफल होता है। यह बात भगवान के नाम का जाप करने से प्रत्यक्ष अनुभव की जा सकती है। भगवान के नाम के जाप द्वारा पापनाश का स्वाभाविक कार्य होता ही है फिर वह जाप व्यग्रचित्त से हो कि एकाग्रचित्त से किन्तु अतीन्द्रिय शान्ति तथा अलौकिक आनन्द का अनुभव तो एकाग्रचित्त में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते जाप द्वारा ही अनुभूत होता है। नीचे के श्लोक उपर्युक्त अर्थं को ही कहते हैं:—

एवं च प्रणवेनैतत्, जपात् प्रत्यूहसंक्षयः ।
प्रत्यक्चैतन्यलाभश्च, युक्तमुक्तं पतञ्जलेः ॥१॥
रजस्तमोमयाद्दोषाद्विक्षेपाच्चेतसो ह्यमी ।
सोपक्रमाज्जपान्नाशं, यान्ति शक्तिहतिं परे ॥२॥
प्रत्यक्चैतन्यमप्यस्मादन्तर्ज्योतिः प्रथामयम् ।
बहिर्व्यापाररोधेन, जायमानं मतं हि नः ॥३॥
—द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका

अन्यत्र भी कहा है कि—'सरलता से जपा जा सके ऐसे भगवान का नाम नहीं जपने वाले एवं रसना वशवर्तिनी होने पर भी उसका उपयोग नहीं करने वाले लोग घोर नरक में जाते हैं—ऐसा देखकर ज्ञानी पुरुषों को सखेद आश्चर्य होता है।

योगातिशयतश्चायं स्तोत्र कोटिगुणः स्मृतः ।
योगदृष्ट्या बुधैर्दृष्टो, ध्यानविश्रामभूमिका ॥१॥
—द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका

अर्थ—'योगाचार्यों ने प्रभु के जाप को स्तोत्र से भी कोटिगुण फलवाला कहा है। इतना ही नहीं पर जप को ध्यान की विश्रान्ति-भूमिका कहा गया है। बाह्यजगत् में प्रसृत वृत्तियों को खींचकर अन्तर्मुखी बनाने हेतु जाप जरूरी है। जाप से प्राण तथा शरीर समतोल अवस्था को प्राप्त करते हैं तथा मन स्थिर तथा शान्त होता है। जप बहिर्वृत्तियों का नाश करता है। उसकी कामना वाले जीवों की कामनापूर्त्ति कर अन्त में निष्काम बनाता है।

'नमो' मन्त्र मन को कल्पना जाल से मुक्त कर तथा समत्व में प्रतिष्ठित कर अन्तमें आत्म-निष्ठ बनाता है। जप करने वाले को सर्वप्रथम आसन सिद्ध करना चाहिए। आसन से देह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की चंचलता नष्ट होती है। चंचलता रजोगुण तथा तमोगुण से होती है। उसके नष्ट होने पर मन तथा प्राण का निग्रह सरल बनता है।

'अरिहं' आत्मा का संकेत है तथा 'नमो' प्राणों का संकेत है। 'ताणं' पद दोनों की एकता को बताने वाला चिह्न है।

'नमो' द्वारा प्राण अरिहं रूपी आत्मा से संयुक्त होता है तथा उससे त्राणशक्ति उत्पन्न होती हैं।

इन्द्रियों को विषयों से शान्त कर आत्मा के प्रति होमने का कार्य 'नमो' मन्त्र द्वारा साधा जाता है। इसीलिए उसे सभी प्रकार के यज्ञों में श्रेष्ठयज्ञरूप में स्थान मिलता है।

नमस्कार द्वारा बोधि एवं निरूपसर्ग

'नमो' का अर्थ है---वंदन, पूजन, सत्कार तथा सम्मान। उनके परिणामस्वरूप बोधि तथा निरुपसर्ग अवस्था प्राप्त होती है। 'नमो' पद निरुपसर्ग पर्यन्त के लाभ का हेतु है, यह निर्णय, श्रद्धा, मेधा, धृति, धारणा तथा अनुप्रेक्षा से होता है। ये श्रद्धादि साधन उत्कटइच्छा, प्रवृत्ति, स्थैर्य तथा सिद्धि के कारण बनकर नमस्कार द्वारा निरुपसर्गपद को प्रदान करवाते हैं।

निरुपसर्गपद अर्थात् जहाँ जन्ममरण आदि उपसर्ग नहीं हो ऐसा मोक्षस्थान। वन्दन अर्थात् अभिवादन तथा मन, वचन तथा काया की प्रशस्तप्रवृत्ति। पूजन अर्थात् पुष्पादि द्वारा सम्यक् अभ्यर्चन। सत्कार अर्थात् श्रेष्ठ वस्त्रालंकारादि द्वारा पूजन। सन्मान अर्थात् स्तुति, स्तोत्रादि द्वारा गुणगान। उसके परिणामस्वरूप बोधि अर्थात् जिन-धर्म की प्राप्ति। वन्दन, पूजन, सत्कार, सन्मान आदि जब श्रद्धा द्वारा होते हैं बलात्कारादि द्वारा नहीं, मेधा द्वारा होते हैं पर जड़चित्त से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं, धृति से होते हैं पर आकुल व्याकुलता से नहीं, धारणा से होते हैं पर शून्यचित्त से नहीं तथा अनुप्रेक्षापूर्वक होते हैं पर मात्र क्रिया रूप में नहीं, तभी वे भाव रूप बनते हैं एवं बोधि तथा निरुपसर्ग अवस्था का कारण बनते हैं।

नवकार के प्रथमपद का अर्थ

नवकार के प्रथम पद का अर्थ यह है कि 'अरिहं' 'अरहं' एवं 'अरुहं' को नमस्कार—त्राणस्वरूप है।

'अरिहं' प्रभु को धर्मकाय अवस्था को कहते हैं। 'अरहं' प्रभु की कर्मकाय अवस्था को कहते हैं। 'अरुहं' प्रभु की तत्त्व-काय अवस्था को कहते हैं। धर्मकाय अवस्था जन्म को जिताने वाली होती है। कर्मकाय अवस्था जीवन को जिताने वाली होती है। तत्त्वकाय अवस्था मृत्यु को जिताने वाली होती है।

जन्म, जीवन एवं मरण इन तीनों अवस्थाओं पर जिन्होंने विजय प्राप्त की है वे अरिहं हैं। संस्कृत अर्हत् शब्द के प्राकृत में तीन रूप हैं। ये ही क्रमशः अरिहं, अरहं एवं अरुहं हैं।

'अर्हं' शब्दब्रह्म है अतः परब्रह्म का वाचक है। परब्रह्म चैतन्य परसामान्य से एक रूप है। उसे नमस्कार का अर्थ है तद्रूप परिणमन। यह परिणमन निर्विकल्प-चिन्मात्र-समाधि रूप है। अतः उससे भव का नाश होता है। 'अरिहं', 'अरहं' अथवा 'अरुहं'—ये शब्द शुद्ध आत्मस्वरूप के बोधक होने से श्रुतसामायिक की प्राप्ति करवाते हैं। श्रुतसामायिक सम्यक्त्व सामायिक की प्राप्ति का कारण है।

भाव से किया गया श्री अरिहंतों का नमस्कार सम्यक्त्व सामायिक रूप है क्योंकि उसमें आत्मतत्त्व की अभेदभाव से प्रतीति है। इस प्रतीति का फल सर्वविरतिसामायिक, अप्रमत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाव एवं अकषायभाव की प्राप्ति करवा कर अन्त में सयोगी तथा अयोगीकैवल्य अवस्था को प्रदान करवाता है। इसलिए उसमें साधुनमस्कार तथा सिद्धनमस्कार आ जाते हैं।

भाव नमस्कार एक अपेक्षा से संग्रहनय की सामायिक है। उसमें स्वरुपास्तित्व तथा सादृश्यास्तित्व रूप में आत्मतत्त्व की एकता का भान होता है। यह भान अनादि अज्ञान ग्रंथि का छेदन करता है। अनादिअ ज्ञानग्रंथि का छेद होने से कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्म में सुदेव, सुगुरु तथा सुधर्म की बुद्धि उत्पन्न नहीं होती तथा अनंतानुबंधी कषायजन्य हिंसादि पापस्थानों का सेवन नहीं होता है। पुनः सुदेव, सुगुरु सुधर्म तथा उन तीनों तत्त्वों को मानने वाले श्री चतुर्विधसंघ में तथा सार्धमिकों की भक्ति में प्रमाद नहीं होता।

चैतन्य पर-सामान्य द्वारा आत्मतत्त्व की एकता का बोध होने से वैर-विरोध का नाश होता हैं; समग्र जीवराशि पर स्नेहपरिणाम की वृद्धि होती हैं; दान, दया, परोपकारादि गुणों का विकास सहज बनता है तथा अल्पकाल में मुक्ति के अनल्प सुखों का लाभ होता है।

यह समग्र लाभ श्री नमस्कार मंत्र के प्रथमपद की अर्थ-भावना के साथ होता जाप प्रदान करवाता है अतः उसका जैसे हो वैसे विशेष आदर करना चाहिए।

तीन गुणों की शुद्‍ध

मन-वचन काया के योग तथा ज्ञान दर्शन-चारित्र स्वरूप आत्मा के गुण आदि नवकार के प्रथमपद के स्मरण से शुद्ध होते हैं। तीनों योगों की शुद्धि से देह की वात-पित्त-कफरूपी तीन धातुओं की विषमता की शुद्धि होती है तथा ज्ञानदर्शन-चारित्ररूपी आत्मा की तीन धातुओं (दधति धारयन्ति जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूपमिति धातवः सम्यग्ज्ञानादयः—धर्म :बिन्दु अ० ८ सू० ११ टीका) अर्थात् तीन गुणों की भी शुद्धि होती है। कहा है किः—

वातं विजयते ज्ञानं दर्शनं पित्तवारणम्।
कफनाशाय चारित्रं धर्मस्तेनामृतायते ॥१॥

—पू.उपा. श्री मेघविजयजी महाराज कृत अर्हद्गीता ॥६।१५॥

अर्थात्—ज्ञान से वात दोष जीता जाता है, दर्शन से पित्त दोष जीता जाता है। चारित्र से कफ दोष जीता जाता है। इससे धर्म अमृत के समान काम करता है।

रागद्वेष-मोह, आत्मा की ज्ञानादि धातुओं के वैषम्य से उत्पन्न होने वाले दोष हैं। वे अनुक्रम से ज्ञान-दर्शन-चारित्र गुण द्वारा जीते जाते हैं। साथ ही साथ क्रमशः मन, वचन तथा काया के योग भी शुद्ध होते हैं क्योंकि ज्ञान में मनोयोग की प्रधानता है; दर्शन में स्तुति-स्तोत्रादिमय पूजा की मुख्यता होने से वचन योग की प्रधानता है चारित्र में कायिक क्रियाओं की मुख्यता होने से काययोग की प्रधानता है। इस प्रकार विचारने से देह के वातादिजन्य तीनों दोषों को तथा आत्मा के रागादिजन्य तीनों दोषों को—विकारों को शुद्ध करने की शक्ति नवकार के प्रथम पद के सात अक्षरमय एक वाक्य में अर्थात् उसके तीनों पदों में भी निहित है।

'नमो' पद द्वारा मनोयोग की तथा ज्ञानगुण की शुद्धि होती है। अतः राग-दोष जीते जाते हैं।

'अरिहं' पद द्वारा वचनयोग की तथा दर्शनगुण की शुद्धि होती है। अतः द्वेषदोष जीता जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'ताणं' पद द्वारा काययोग की तथा चारित्रगुण की शुद्धि होती है अतः मोहदोष जीता जाता है।

तीनों योगों तथा उनके द्वारा अभिव्यक्त होते ज्ञानादि तीनों गुणों द्वारा वात-पित्त-कफ के दोष तथा राग-द्वेष-मोह के दोष भी नष्ट होते हैं। अर्थात् शरीर तथा आत्मा दोनों ही की एक साथ शुद्धि करवाने का गुण नवकार के प्रथम पद के जाप में स्थित है, वैसे ही उपलक्षण से धर्म के प्रत्येक अंग के सम्यक् आराधन में वह शक्ति निहित है।

'नमो' पद की गम्भीरता

'नमो' मंत्र में नवधा भक्ति निहित है। 'नमो' मंत्र द्वारा नाम का श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण होता है साथ ही आकृति का पूजन, वन्दन तथा अर्चन होता है। द्रव्यनिक्षेप से परमात्मा की सेवा तथा भक्ति होती है तथा भावनिक्षेप से परमात्मा के प्रति आत्मनिवेदन अथवा सर्वसमर्पण होता है।

नवकार सर्वमंगलों में प्रथममंगल है। पाप, अशुभ, कर्म तथा सभी मलों को गलाने वाला मंगल होता है, उसमें भी उत्कृष्ट पंचमंगलस्वरूप नवकार है।

नवकार द्वारा बाह्य-अभ्यन्तर अथवा द्रव्य-भावमल नष्ट होते हैं। अज्ञान तथा अश्रद्धा ही भावमल हैं। नवकार द्वारा आत्मा का अज्ञान टलता है तथा परमतत्त्व का ज्ञान होता है।

नवकार द्वारा धर्मफल की अश्रद्धा टलती है तथा श्रद्धा जागृत होती है। नवकार, मिथ्यात्व के तथा अज्ञान के परिणामों को गलाता है विनष्ट करता है, हनन करता है, शुद्ध करता है तथा विध्वंस करता है; सम्यक्त्व के तथा ज्ञान के परिणामों को लाता है, उत्पन्न करता है, सर्जित करता है, पुष्ट करता है तथा वर्द्धित करता है: अप्रतीत की प्रतीति करवाता है; अनिर्णित का निर्णय करवाता है; आत्मतत्त्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रतीत है उसकी प्रतीति करवाता है: वैसे ही धर्मतत्त्व अनिर्णीत है उसका निर्णय करवाता है।

कम से कम प्रयत्न से अधिक से अधिक फल लाने की शक्ति नमो मंत्र में है। 'नमो' पद में मैत्री, प्रमोद, कारुण्य तथा माध्यस्थ्य भावनाओं के साथ अनित्य अशरण संसार, एकत्व, अन्यत्वादि भावनाएं समाविष्ट हो जाती हैं। अतः प्रथम पद अति गंभीर है।

नवकार में अष्टांग योग

नमस्कार जिस प्रकार मोक्ष का बीज है वैसे ही अनमस्कार संसार का बीज है। नमनीय को नहीं नमन करना तथा अनमनीय को नमन संसार वृक्ष का बीज है। अनमनीय को अनंमन तथा नमनीय को नमन धर्मवृक्ष का बीज है। नमनीय को नमस्कार सभी दुःखों का तथा पापों का नाशक है। नमनीय को अनमस्कार, सभी दुःखों का तथा पापों का उत्पादक है। एक अंग्रेज लेखक ने ठीक ही कहा है कि "प्रार्थना संयोगों को सुधारती है। अप्रार्थना संयोगों को बिगाड़ती है, दोनों में से कोई निष्क्रिय-निष्फल नहीं।"

नवकार में तप है, स्वाध्याय है तथा ईश्वरप्रणिधान है। तप से शरीर सुधरता है, स्वाध्याय से मन सुधरता है तथा ईश्वरप्रणिधान से आत्मा सुधरती है।

परमात्मा के समीप बसने हेतु प्रथम अनात्मा के संग से मुक्त होना चाहिए। आसन शरीर का संग छुड़वाते हैं। प्राणायाम प्राणों पर नियमन लाता है। प्रत्याहार इन्द्रियों का संग छुड़वाता है। धारणा, ध्यान तथा समाधि अनुक्रम से मन, बुद्धि तथा अहंकार का संग छुड़ाते हैं। नवकार में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि की साधना है। उसके साथ यम-नियम भी साधे जाते हैं। नियम आन्तर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शान्ति के लिए हैं तथा यम बाह्य शान्ति के लिए हैं। नवकार से बाह्य-आन्तर सम्बन्ध सुधरते हैं।

इष्टदेवता को नमस्कार एवं परम्पर फल

इष्टदेवता को नमस्कार किए बिना कोई भी आत्मा श्रुत-ज्ञान का पार नहीं पा सकता है। यह पंचमंगल इष्टदेवता को नमस्कार स्वरूप है। इसलिए श्रुतज्ञान का पार पाने के इच्छुक को निरन्तर उसका आलम्बन लेना चाहिए--ऐसा श्री महानिशीथसूत्र में प्रतिपादित किया हुआ है।

श्रुतज्ञान से जीवादि तत्त्वों का बोध होता है। इससे दया की लगन उत्पन्न होती है। सर्व जीव मेरी आत्मा के समान हैं-ऐसी स्थिरबुद्धि उत्पन्न होने से जीवों की संघट्टना, परिताप-नादि पीड़ा का परिहार होता है। इससे आस्रव द्वार का विवर्जन होता है, संवर भाव की प्राप्ति होती है एवं अत्यन्त विषयतृष्णा के त्याग रूप दम तथा तीव्र क्रोधकण्डूति के त्यागरूप शमगुण का लाभ होता है।

अकषायता से सम्यक्त्वगुण का लाभ होता है एवं उससे जीवादि पदार्थों का संदेह-विपर्यास रहित संवेदनात्मक विशिष्ट अनुभवज्ञान होता है। इस प्रकार का ज्ञान होने से अहितकारी आचरण का त्याग एवं ज्ञान–ध्यानादि हितकारी आचरण में उद्यम होता है तथा सर्वोत्तम क्षमादि दशविध यति–धर्मों में आसक्ति होती है जिससे सर्वोत्तम मृदुतादि गुणों का पालन होता है।

स्वाध्याय-ध्यान सहित सर्वोत्कृष्ट संयम धर्म का पालन परम्परा से मुक्ति सुख प्रदान करवाता है। इन सबका मूल इष्ट देवता को नमस्कार है तथा इष्ट देवता के नमस्कारपूर्वक होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ सामायिकसूत्र से लगाकर बिन्दुसार पर्यन्त श्रुतज्ञान का आराधन है।

पंचनमस्कार रूपी परमधर्म

"पंच-नमुक्कारो खलु, विहिदाणं सत्तिओ अहिंसा च।
इन्दियकसायविजओ, ऐसो धम्मो सुहपओगो ॥१॥"

—उपदेशपद गा० १६८

अर्थात्—'नर नारकादि परिभ्रमण रूप संसार ही पारमार्थिक व्याधि है। सभी देहधारी प्राणियों के लिए यह व्याधि साधारण है। शुद्ध धर्म उसका औषध है।' गुरुकुल में बसने से एवं गुरु आज्ञानुसार जीवन जीने से शुद्ध धर्म की प्राप्ति होती है। शुद्ध धर्म के चार लक्षण हैं (१) विधियुक्त दान, (२) शक्त्यनुसारी सदाचार, (३) इन्द्रिय-कषाय का विजय, (४) पंचपरमेष्ठि नमस्कार।

अन्यत्र धर्म के चार प्रकार दान, शील, तप एवं भाव, कहे गये हैं। वे ही इस गाथा में भिन्न प्रकार से कहे गये हैं। विधियुक्त दान ही दानधर्म है, शक्त्यनुसारी सदाचार ही शील धर्म है, इन्द्रिय कषाय का विजय ही तप धर्म है एवं पंचपरमेष्ठि नमस्कार ही भावधर्म है।

भाव रहित दानादि जिस प्रकार निष्फल कहे गए हैं वैसे ही पंचनमस्काररहित दान भी निष्फल ही है। अतः सभी धर्मों को सफल बनाने वाला पंच नमस्कार ही परम धर्म है।

मंगल, उत्तम एवं शरण की सिद्धि

नमस्कारभाव आत्मा को मन की आधीनता से मुक्त करता है। मन को आत्माधीन बनाने की प्रक्रिया नमस्कार-भाव में निहित है। धर्म की अनुमोदना रूप नमस्कार ही भाव-धर्म है। दूसरों का आभार नहीं मानने में कारणभूत कृपणता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोष है। सम्यग्दृष्टि के मन में नमस्कार भाव ही सद्देव है, सम्यग्ज्ञानी के मन में सद्गुरु है एवं सम्यक् चारित्री के मन में सद्धर्म है। नमस्कारभाव के बिना मानसिक भेदभाव टलता नहीं एवं जब तक वह नहीं टलता है तब तक अहंकार भाव गलता नहीं है। अहंकार का गलना ही भेदभाव का टलना है। भेदभाव टले बिना एवं अभेदभाव आए बिना जीव, जीव को जीव रूप में कभी पहचान नहीं सकता है, सम्मानित नहीं कर सकता है एवं न चाह सकता है।

भेदभाव को टालने का एवं अभेदभाव को साधने का सनातन साधन 'नमो' पद है। 'नमो' पद रूपी अद्वितीय साधन द्वारा जीव अपनी योग्यता को विकसित करता है एवं अयोग्यता को टालता है। योग्यता के विकास द्वारा रक्षण होता है एवं अयोग्यता टलने से विनाश रुकता है।

अरिहंतों को किया हुआ नमस्कार भावशत्रुओं का हनन करता है, योग्यता प्रदान करता है एवं विनाश को रोकता है। भावशत्रुओं के नाश से मंगल होता है। योग्यता के विकास से उत्तमता मिलती है एवं विनाश के अटकने से शरण की प्राप्ति होती है। नमस्कार से मंगल, उत्तम एवं शरण–इन तीनों अर्थों की सिद्धि होती है।

मंत्रचैतन्य प्रकट करने वाला मंत्र

देवता, गुरु एवं आत्मा का जो मनन करवाता है एवं जो मनन द्वारा जीव का रक्षण करे वह मंत्र है। मंत्र एक ओर मन एवं प्राण का आत्मा के साथ संयोजन करवाता है एवं दूसरी ओर मनन द्वारा देवता एवं गुरु के साथ आत्मा का ऐक्य सधवाता है। मंत्राक्षरों का सम्बन्ध मन एवं प्राणों के साथ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंत्र के अर्थ का सम्बन्ध देवता एवं गुरु के साथ है। गुरु, मंत्र एवं देवता तथा आत्मा, मन एवं प्राण इन सबका ऐक्य होने से मन्त्रचैतन्य प्रकट होता है तथा मन्त्रचैतन्य प्रकट होने से यथेष्ट फल की सिद्धि होती है।

देवता एवं गुरु का सम्बन्ध सकल जीवसृष्टि के साथ है अतः मंत्र चैतन्य विश्वव्यापी बन जाता है। इस प्रकार परमेष्ठि नमस्कार समत्वभाव को विकसित करता है। समत्वभाव का विकास ममत्वभाव को दूर कर देता है। ममत्वभाव के नाश से अहंत्व मिट जाता जाता है। समत्वभाव के विकास से अर्हत्व प्रकट होता है।

परमेष्ठि नमस्कार सर्व मंगलों में प्रधान श्रेष्ठमंगल है साथ ही नित्य वर्द्धमान तथा शाश्वत मंगल है क्योंकि वह जीव को अहं-ममभाव से मुक्त करता है तथा जीव में अर्हंभाव को विकसित करता है, स्वार्थवृत्ति दूर करता है तथा परमार्थवृत्ति का विकास करता है। पुनः पुनः परमेष्ठि नमस्कार द्वारा देव, गुरु, आत्मा, मन तथा प्राण का ऐक्य साधित होता है तथा मंत्रचैतन्य प्रकट होता है।

अनन्तर-परम्पर फल

पंच नमस्कार का अनन्तर फल सम्यग्-दर्शनादि की प्राप्ति, मिथ्यात्व, अज्ञान तथा अविरति आदि का नाश तथा परम्पर फल स्वर्गापवर्ग रूप मंगल का लाभ है।

पाप का नाश अर्थात् पुद्गल के प्रति मोह का नाश है तथा मंगल का आगमन अर्थात् जीवों को जीवत्व के प्रति स्नेह का आकर्षण। पुद्गल के प्रति विगतरति तथा जीवों के प्रति विशिष्टरति ही नमस्कार के प्रति अभिरति का फल है। यह नमस्कार पुद्गल के प्रति नमनशील तथा चैतन्य के प्रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनमनशील जीव को चैतन्य के प्रति नमनशील तथा पुद्गल के प्रति अनमनशील बनाता है।

पंच परमेष्ठि पुद्गल के प्रति विरक्त एवं चैतन्य के प्रति अनुरक्त हैं, इसी से उनको नमन करने वाला भी क्रमशः जड़ के प्रति विरक्ति वाला तथा चैतन्य के प्रति अनुरक्ति वाला बनता है।

पुद्गल का विराग जीव को काम, क्रोध तथा लोभ से मुक्त करता है तथा चैतन्य का अनुराग जीव को शम, दम तथा संतोषयुक्त करता है। यह चैतन्य हितकर होने से नमनीय है तथा यह जड़ अहितकर होने से उपेक्षणीय है। चैतन्य संवेदन से युक्त है एवं जड़ संवेदन शून्य है। संवेदन शून्य के प्रति चाहे जितना ही नम्र बना जाय पर वह सब व्यर्थ है। संवेदनशील के प्रति नम्र रहने से संवेदन शक्ति प्राप्त होती है।

संवेदन का अर्थ है स्नेह तथा स्नेह का अर्थ है दया, करुणा, प्रमोद सहाय तथा सहयोगादि।

जिससे उपकार होना तीनों काल में शक्य नहीं ऐसे जड़ तत्त्व के प्रति नमन करते रहना ही मोह, अज्ञान तथा अविवेक है। जिससे उपकार होना शक्य हो उसे हो नमन करने का अभ्यास करना तथा उसे स्मरण पथ में कायम रख नम्र रहने में ही विवेक है, समझदारी है तथा बुद्धिमत्ता है।

नवकार से जड़ के प्रति उदासीनता तथा चैतन्य के प्रति नमनशीलता अभ्यस्त की जाती है।

योग्य बनो एवं योग्यता प्राप्त करो

संवेदनशील के प्रति संवेदन धारण करने से योग्यता प्रकट होती है। संवेदन शून्य जड़ पदार्थों के प्रति ममत्व रखने से योग्यता नष्ट होती है तथा अयोग्यता प्रकट होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव जड को अनन्तकाल तक नमा है पर यह नमस्कार निष्फल गया है। चेतन को एक बार भी सच्चे भाव से नमे तो वह सफल हो जाता है। चेतन को नमने का अर्थ है पिण्ड में देह के प्रति आदर छोड़ आत्मा के प्रति आदर रखना तथा ब्रह्माण्ड में पुद्गल मात्र के प्रति राग छोड़ जीव मात्र के प्रति राग धारण करना। राग धारण करने का अर्थ है संवेदन-शील बनना।

जो संवेदनशील हैं उनके प्रति ममत्व बताने से सभी प्रकार की आवश्यकताएं बिना मांगे पूर्ण होती हैं।

सभी प्रकार के पाप की उत्पत्ति पुद्गल के राग से उत्पन्न होती हैं तथा सभी प्रकार के पुण्य की उत्पत्ति चैतन्य के बहुमान से होती है। नमस्कार से चैतन्य का बहुमान होता है। अतः वह सभी प्रकार के मंगल की उत्पत्ति का कारण है। नवकार पाप का नाशक तथा मंगल का उत्पादक बनता है क्योंकि उसमें चैतन्य का बहुमान है तथा जड़ का असम्मान है। कर्म तथा कर्मकृत सृष्टि ही जड़ है। उसका अन्त करने वाले परमेष्ठि हैं। अतः उनको किया गया नमस्कार जडसृष्टि के राग को शमित करता है तथा चैतन्यसृष्टि के प्रेम को विकसित करता है।

नमस्कार द्वारा पाप का मूल पुद्गल का राग नष्ट होता है तथा धर्म का मूल चैतन्य का प्रेम प्रकट होता है अतः वह उपादेय है। चैतन्य विश्व की सर्वश्रेष्ठ सत्ता है। नवस्कार में इस सर्वश्रेष्ठ सत्ता को नमस्कार है तथा उनको नमस्कार है जिन्होंने इस सर्वश्रेष्ठ सत्ता को नमनकर शुद्ध चैतन्य प्रकट किया है। इतना ही नहीं पर उनको भी नमस्कार करने वाले सभी विवेकी जीवों की सर्वश्रेष्ठ क्रिया का अनुमोदन है तथा क्रियाजन्य पापनाश एवं मंगललाभ रूपी सर्वश्रेष्ठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फल का भी स्मरण तथा अनुमोदन है। यह स्मरण जितनी बार अधिक किया जाय उतना ही अधिक लाभ होता है--यह बात निश्चित है।

द्रव्यमंगल संदिग्ध फल वाले हैं। भावमंगल असंदिग्ध फल वाले हैं। यह नवकार सभी भावमंगलों का भी नायक है। नायक का अर्थ है कि जिसके अस्तित्व में ही दूसरे मंगल भाव-मंगल बनते हैं।

मंगल के मंगल बने रहने में कारण चैतन्य की भक्ति एवं जड की विरक्ति है। नवकार की मंगलमयता चैतन्य के आदर में तथा जड के अनादर में है। जडतत्त्व का प्रेम जीव को दुख:दायक होता है। चैतन्यतत्त्व का प्रेम जीव को सुखदायक होता है।

नमस्कार रूपी रसायन का पुनः पुनः सेवन जड़ के प्रति आसक्ति दूर करता है तथा चैतन्यतत्त्व की भक्ति विकसित करता है अतः वह सर्व मंगलों का मांगल्य तथा सर्व कल्याणों का कारण है।

हितैषिता ही विशिष्ट पूजा

अयोग्य को नमन करने वाले तथा योग्य को नहीं नमन करने वाले को ऐसी योनियाँ मिलती हैं कि जिसमें अनिच्छा से भी सदा नमन करना पड़ता है। वृक्ष के तथा तिर्यञ्च के भव इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। नमस्कार से धर्मवृक्ष का मूल सींचा जाता है। साधुधर्म तथा गृहस्थ धर्म इन दोनों प्रकार के धर्मों के मूल में सम्यक्त्व है तथा वही देवगुरु को नमस्कार रूप है।

माता पिता को नमन ही सतताभ्यास है, देवगुरु को नमन ही (देवगुरु आदि प्रशस्त विषयों का अभ्यास) विषयाभ्यास है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा रत्नत्रयी को नमन ही भावाभ्यास है। यह त्रिविध नमन-क्रिया उत्तरोत्तर आत्मोन्नति हेतु प्रक्रिया है।

छोटा बड़े को नमन करता है यह संसार का क्रम है। इसी प्रकार बड़ा छोटे को (छोटा दो हाथ जोड़कर बड़े को नमन करता है इसी प्रकार भले ही) नमन नहीं करे पर अपने हृदय में छोटे को अवश्य स्थान प्रदान करता है, उसका हित चिन्तन करता है, उसे सन्मार्ग में संयुक्त करता है तथा जिस प्रकार उसका कल्याण हो वैसा विचार करता है—यह भी एक प्रकार का नमस्कार भाव है।

अर्हं त्रिभुवनपूज्य हैं, क्योंकि वे त्रिभुवन हितैषी हैं। अपने उपकारी को भूल जाना अहंकार है तथा अपने उपकारी को जीवन भर याद रखना ही नमस्कार है। अहंकार पाप का मूल है तथा नमस्कार मोक्ष का मूल है। जैसे दवा के लागू पड़ने पर दर्द कम पड़ता है वैसे ही नमस्कार लागू पड़ने पर अहंकार कम हो जाता है। अहंकार का अर्थ है स्वार्थ का भार। जब तक वह नहीं घटता है तब तक नमस्कार फलान्वित नहीं कहा जा सकता है।

अपने सुख का विचार ही स्वार्थ है। स्वार्थ का दूसरा नाम तिरस्कार है। सभी के सुख का विचार ही परमार्थ है। इसका दूसरा नाम नमस्कार भाव है। शरीर के अणु अणु से तिरस्कार रूपी चोरों को भगा देने हेतु नमस्कार को अस्थिमज्जा बनाना चाहिए।

नमस्कार का प्रथम फल पापनाश अथवा स्वार्थवृत्ति का नाश है। दूसरा फल पुण्यबन्ध-शुभ का अनुबन्ध है। नमस्कार से पाप का नाश चाहना चाहिए तथा पुण्य का बन्ध ही नहीं, अनुबन्ध चाहना चाहिए। उससे जो पुण्यबन्ध हो वह सर्व-कल्याण की भावना में परिणमित होता है। तिरस्कार के पाप से बचने हेतु नमस्कार ही एक अमोघ साधन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमस्कारधर्म की व्याख्याएँ

नमस्कार क्षमा का दूसरा नाम है। भूल होने के पश्चात् उसे सुधार लेने हेतु नम्रता बताने का ही नाम क्षमापना है। अपने द्वारा हुई भूल की क्षमा मांगनी तथा दूसरों की भूल को क्षमा करना ही नमस्कार धर्म की आराधना है।

जिस प्रकार अहंकार उपकारियों को पहचानने देता नहीं वैसे ही अपने अपराध को स्वीकार भी करने देता नहीं। जैसे अहंकार उपकारियों को पहचानने नहीं देता वैसे ही अपने अपराध को भी स्वीकार करने नहीं देता। जैसे नमस्कार उपकारियों को भूलने नहीं देता वैसे ही अपने अपराधों को भी भूलने नहीं देता। उपकार के स्वीकरण की भांति अपराध का स्वीकार भी नमस्कार है। विषयों के प्रति नमनशीलता का त्याग कर परमेष्ठियों के प्रति नमनशीलता का अभ्यास करना भी नमस्कार धर्म है। बाह्यपदार्थों के प्रति तृष्णावान नहीं बनना तथा आत्मतृप्त रहने का अभ्यास करना भी नमस्कार धर्म है।

जीव अपनी जाति, कुल, रूप, बल, लाभ, वृद्धि, वैभव, यश तथा श्रुतादि के प्रति नम्र है ही। नम्रता से उनके प्रति आदर, रुचि तथा सम्मान वताता ही है, पर वह नमनशीलता धर्म रूप नहीं होती। पूज्य तत्त्वों के प्रति नम्र रहना ही सच्ची नम्रता है।

सांसारिक पदार्थों के प्रति नमस्कार भाव अनादि कुवासना के योग से होता हो है। उसका स्थान परिवर्तन कर मैत्र्यादि के विषयभूत दूसरे जीवों के प्रति, श्री परमेष्ठि भगवान के प्रति तथा आत्मातत्त्व के प्रति नम्र बनना ही धर्म है तथा यही विवेक है। इससे विनय योग्य व्यक्ति के प्रति विनय होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह विनय ही नमस्कार धर्म रूप बनकर कर्म का क्षय करता है।

उपकारियों को नमस्कार करने से अपने पर स्थित उनके ऋण से मुक्ति होती है। उनके प्रशस्त अवलम्बन से तथा प्रशस्त ध्यान के बल से कर्मक्षय होता है।

बुद्धिबल को विकसित करनें हेतु जिस प्रकार अक्षरज्ञान तथा उसके साधनों की आवश्यकता होती है वैसे ही भावना-बल को विकसित करने हेतु नमस्कार धर्म तथा उसके सभी साधनों की आवश्यकता है। न्याय, नीति, क्षमा. सदाचार तथा परमेश्वरभक्ति उसके साधन हैं। वे सभी साधन नमस्कार-भाव को विकसित करते हैं तथा नमस्कार भाव अहंकार भाव का नाश कर परमात्मतत्त्व के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है।

श्री पंच परमेष्ठियों में प्रकटीभूत परमात्मतत्त्व जब अपने नमस्कार भाव का विषय बनता है तब अन्तर में स्थित परमात्मतत्त्व जाग्रत होता है तथा सकल क्लेश का नाश कर परमानन्द की प्राप्ति करवाता है।

नमस्कार का पर्याय—अहिंसा, संयम एवं तप

अन्तर में करुणा तथा आचरण में अहिंसा श्रेष्ठ मंगल हैं। अहिंसा में दूसरे जीवों के प्रति तात्त्विक नमन भाव है। संयम तथा तप अहिंसा की सिद्धि हेतु अनिवार्य है।

पांचों इन्द्रियों को नियमित करने का ही नाम संयम है तथा मन को नियमित रखना ही तप है। इन्द्रियों तथा मन को अंकुश में रखे बिना अहिंसा पाली नहीं जाती तथा अहिंसा-पालन के बिना नमस्कार भाव की पूर्णतया आराधना नहीं होती।

अहिंसा के पालन में प्रभुआज्ञा की आराधना है। प्रभु-आज्ञा का रहस्य जीव मात्र के आत्मसम स्वीकरण में है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचरण बिना की उच्च विचारसरणी भी निष्फल है। विचार का फल आचार है। उसके अभाव में विचार मात्र वाणी तथा बुद्धि का विलास है। इसी कारण से अहिंसा संयम तथा तप को उत्कृष्ट मंगल रूप गिना गया है। जिस प्रकार मैत्री बिना अहिंसा शुष्क है वैसे ही अहिंसा रहित मैत्री भी माया है। जैसे वैराग्य रहित संयम शुष्क है वैसे ही संयम रहित वैराग्य भी माया कपट है। जैसे अनासक्ति रहित तप शुष्क है वैसे ही तप रहित अनासक्ति भी आड़म्बर मात्र है।

अहिंसायुक्त मैत्री, संयममय वैराग्य तथा तपयुक्त अनासक्ति ही तात्त्विक हैं।

करुणाभाव का द्योतक

प्रभु के नाम, रूप, द्रव्य तथा भाव इन चारों में करुणा समाविष्ट है। उसका साक्षात्कार ही आत्मार्थी जीवों का कर्त्तव्य है अन्यथा कृतघ्नता तथा अभक्ति पोषित होती है।

प्रभु के नाम से पाप जाता है तथा पापनाश से दुःख जाता है। प्रभु की प्रतिमा से भी पाप और दुःख नष्ट होते हैं।

प्रभु का आत्मद्रव्य तो करुणा से समवेत-समेत है ही तथा भावनिक्षेप से तो प्रभु साक्षात् करुणामूर्ति हैं।

इस प्रकार प्रभु की करुणा का ध्यान ही भक्तिभावना की वृद्धि का साक्षात् कारण है।

करुणाभाव शुद्ध जीव का स्वभाव है तथा वह नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भाव द्वारा अभिव्यक्त होता है—बाहर प्रकट रूप से दिखता है।

नामादि चार निक्षेपों द्वारा श्री अरिहंतादि पांच परमेष्ठियों को होता नमस्कार सभी पापों का तथा दुःखों का नाशकारी होकर करुणाभाव के प्रभाव का द्योतक है तथा उससे भक्ति-भाव को बढ़ाने वाला है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'नमो' पद का रहस्य

'नमो' में नम्रता है, विनय है, विवेक है तथा वैराग्य भी हैं; तप स्वाध्याय तथा ईश्वरभक्ति भी है; साथ ही दुष्कृत की गर्हा, सुकृत की अनुमोदना तथा श्री अरिहंतादि की शरण भी है।

नमन करना अर्थात् मात्र मस्तक को झुकाना ही नहीं पर मन को, मन के विचारों को, मन की इच्छाओं को तथा मन की तृष्णाओं को भी नमित करना अर्थात् उनको तुच्छ गिनना है।

मात्र हाथ जोड़ना ही नहीं पर अन्तकरण में एकता-अभेद की भावना करनी चाहिए।

नम्रता का अर्थ है अहंभाव का सम्पूर्ण नाश तथा बाह्य विषयों में अपने अहंत्व की बुद्धि का सर्वथा विलय।

शून्यवत् होने से पूर्ण बना जाता है। कुछ होना चाहिए अर्थात् सबसे अलग पड़ना चाहिए। कुछ भी नहीं रहना अर्थात् परमात्मतत्त्व में मिल जाना।

समुद्र में रहने वाली बूंद समुद्र की महत्ता भोगती हैं। समुद्र से अलग होकर जब वह अपनेपन का दावा करने जाती है तब वह तुरन्त सूख जाती है उसका अस्तित्व मिट जाता है। 'नमो, पद में गुप्त रहस्य क्या है यह इसी से प्रकट होता है।

नमस्कार से दर्शन की शुद्धि होती है अर्थात् कर्मकृत अपनी हीनता, लघुता या तुच्छता का दर्शन होता है तथा परमात्म-तत्त्व की उच्चता, महत्ता तथा भव्यता का भाव होता है जिससे अहंभाव का फोड़ा फूट जाता है तथा ममताभाव का मवाद निकल जाता है परिमाण स्वरूप जीव को परम शान्ति का अनुभव होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकाग्रता से अर्थविचार सहित जप करने वाले के समस्त कष्ट दूर होते हैं ।

'मननात् त्रायते यस्मात् तस्मान्मंत्रः प्रकीर्तितः ।'

जिसके मनन से रक्षा होती है वह मंत्र है ।

मनन अर्थात् चिन्तन मन का धर्म है । मन का लय होने से चिन्ताराशि का त्याग होता है। चिन्ताराशि के त्याग से निश्चिंतता रूपी समाधि प्राप्त होती है ।

मन जब सभी विषयों की चिन्ता से रहित होता है तथा आत्मतत्त्व में विलीन होता है तब वह समाधि प्राप्त करता है ।

नवकार के प्रथम दो पदों में मुख्य रूप से सामर्थ्ययोग को नमस्कार है क्यों श्री अरिहंत तथा सिद्धों में अनन्त सामर्थ्य-वीर्य प्रकट हुआ है । बाद के तीन पदों में प्रधान रूप से शास्त्रयोग को नमस्कार है क्योंकि आचार्य, उपाध्याय तथा साधु में वचनानुष्ठान निहित है । अन्तिम चार पदों में इच्छायोग को नमस्कार है क्योंकि उसमें नमस्कार का फल वर्णित है । फल श्रवण से नमस्कार में प्रवृत्त होने की इच्छा होती है ।

श्री नवपदों में स्थित भिन्न २ प्रकार का नमस्कार यदि ध्यान में रख कर किया जाय तो वह तुरन्त सजीव एवं प्राणवान् बनता है ।

ज्ञानपूर्वक, श्रद्धापूर्वक एवं लक्ष्यपूर्वक प्रमाद छोड़ कर यदि नमस्कार महामंत्र का आराधन किया जाय तो वह अचिन्त्य चिन्तामणि एवं अपूर्ण कल्पवृक्ष के समान फलप्रद बनता है

चिरकाल का तप, बहुत भी श्रुत एवं उत्कृष्ट भी चारित्र यदि भक्ति शून्य हो तो वे अहंकार के पोषक बन अधोगति का सर्जन करते हैं । भक्ति का उदय होने से वे सब कृतकृत्य होते हैं । मंत्र के ध्यान से एवं जाप से बारबार प्रभु के नाम का एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंत्र का पाठ करने से चित्त में भक्ति स्फुरित होती है।

बाह्यपदार्थ बाह्यक्रिया की अपेक्षा रखते हैं परन्तु सूक्ष्मतम तथा जीव मात्र में सत्ता रूप में विराजमान परमात्मा की प्राप्ति विवेक विचार, ज्ञान तथा भक्ति रूपी अन्तरंग साधनों से होती हैं।

स्नेह रूपी तेल से भरित ज्ञानदीप मनमन्दिर में प्रकट करने से देहमन्दिर में विराजमान अन्तर्यामी परमात्मा के दर्शन होते हैं अतः दीर्घ काल पर्यन्त आदर सहित सतत अभ्यास की जरूरत है।

वह अभ्यास मन्त्र के जाप द्वारा तथा उसके अर्थ की भावना द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार श्री नवकारमन्त्र उसकी अर्थभावना सहित जब आराधित होता है तब वह अवश्य भक्तिवर्द्धक बनता है तथा बढ़ी हुई भक्ति मुक्ति को समीपवर्तिनी कर देती है।

॥ शिवमस्तु सर्वजगतः ॥

*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगल भावना

खामेमि सव्वजीवे, सव्वेजीवा खमन्तु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणई ।।१।।

—जगत के सभी जीवों से मैं क्षमा मांगता हूँ। उनसे मेरे अपराधों की क्षमा मांगता हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा प्रदान करो —यह प्रार्थना करता हूँ, मेरा सभी जीवों के साथ मैत्री-भाव है, मेरा किसी के साथ वैर विरोध नहीं है।

मा कार्षीत् कोऽपि पापानि, मा च भूत कोऽपि दुःखितः ।
मुच्यतां जगदप्येषा, मतिर्मैत्री निगद्यते ।।२।।

कोई भी प्राणी पाप मत करो, कोई भी जीव दुःखी नहीं हो, यह सारा जगत् कर्मबन्धन से मुक्त हो, ऐसी बुद्धि को मैत्री-भाव कहा जाता है।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरताः भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ।।३।।

जगत् के सर्वजीवों का कल्याण हो, सभी प्राणी परहित सम्पादन करने वाले हों, सभी के दोष नष्ट हो जायं तथा सर्वत्र समग्र लोक सुखी हो।

*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट

अकारादि क्रम से –

अष्टप्रवचनमाता—पांच समिति एवं तीन गुप्ति को जैन शास्त्रों में अष्टप्रवचनमाता का सूचक नाम दिया गया है। जिस प्रकार माता अपने बालक का धारण पोषण एवं रक्षण करती है वैसे ही समिति व गुप्ति के ये आठ प्रकार प्रवचन अर्थात् चारित्र रूपी बालक का धारण, पालन व पोषण करती हैं।

आस्रव—कर्मों का आगमन द्वार।

उपयोग—जीव का चेतनामय व्यापार।

कषाय—जीव के शुद्ध स्वरूप को कलुषित करने वाली वृत्तियाँ।

कर्म—आत्मा के शुद्ध ज्ञानादि गुणों को आच्छादित करने वाले कर्म आठ प्रकार के हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय वेदनीय, मोहनीय आयुष्य, नाम, गोत्र एवं अन्तराय

गणधर—तीर्थंकर भगवन्त के मुख्य शिष्य।

गुप्ति—मन, वचन एवं काया का नियमन। ये तीन हैं मनःगुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्ति,

गुण और पर्याय—द्रव्य के सहवर्ती धर्म को गुण एवं द्रव्य की क्रमवर्ती अवस्था को पर्याय कहते हैं।

चौदहगुणस्थानक—आत्मा के गुणों का क्रमिक विकास बताने के लिए जैनदर्शन ने चौदह गुणस्थानकों का निरूपण किया है। यह आत्मा के विकास का क्रम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिकरण योग—करना, करवाना एवं अनुमोदन करना।

द्रव्यप्राण—द्रव्यप्राण के दस भेद हैं, स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास एवं आयुष्य।

नव तत्त्व—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव संवर, निर्जरा, बंध, एवं मोक्ष ये नवतत्त्व हैं।

निगोद—जीव की एक निकृष्ट अवस्था।

परिषह—संवर के पांचवे प्रकार में परिषह आता है। धर्ममार्ग में दृढ़ रहने तथा कर्मबन्धनों का विध्वंस करने के लिए जो-जो स्थिति समभावपूर्वक सहन करने योग्य है उसे परिषह कहते हैं।

भावप्राण—ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं वीर्य ये चार भाव प्राण हैं। इन्हें अनन्तचतुष्टय भी कहते हैं।

मिथ्यात्व—गलत मान्यता।

मिथ्याभिनिवेश—कदाग्रह।

स्कन्ध—पौद्गलिक पिण्ड।

संवर—जीव में कर्म के आगमन को रोकने वाला।

समिति—सम्यक् प्रकार की चेष्टा। ये पांच हैं—एवं जीवन का प्रत्येक कार्य उपयोगपूर्वक करने की शिक्षा देती हैं।

ज्ञान—जैनदर्शन में ज्ञान पांच प्रकार का माना गया है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्याय एवं केवल ज्ञान।

*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमस्कार महामंत्र पर उपलब्ध

हिन्दी संस्करण

नमस्कार महामंत्र के अनुचिन्तन की एक और कड़ी

"परमेष्ठि नमस्कार"

का हिन्दी संस्करण शीघ्र प्रकाशित हो रहा है। इस पुस्तक में पू० पं० श्री भद्रंकर विजयजी महाराज साहब ने अनेक दृष्टिकोणों से नमस्कार महामन्त्र पर गम्भीर चिन्तन किया है।

* * *

नमस्कार महामन्त्र को समझने के लिए तथा उसकी आराधना के लिए सभी स्तरों के साधकों के लिए उपयोगी एक और अनुपम प्रकाशन।

नमस्कार चिन्तामणि

लेखक :

पू० मुनिराज श्री कुन्दकुन्द विजयजी

*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi